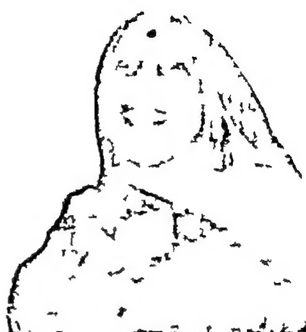

स्व. श्री बिरदीचन्दजी छल्लाणी


स्व. श्रीमती श्रीकवरबाई छल्लाणी

स्वर्गीय श्री बिरदीचन्दजी छल्लाणी

एव

स्व श्रीमती श्रीकवरबाई छल्लाणी की पुण्य स्मृति मे

श्री नेमीचन्द, श्रीचन्द, रामसिग, पदमचन्द, रमेशचन्द, अजितकुमार

जिनेन्द्र, हीरालाल, श्रेणिककुमार छल्लाणी

विजय ज्वैलर्स

१४८ सी न २ रोड

मायावरम् - ६०९ ००१

© S T D ०४३६४ - २२१९१

आशीर्वचन



मन्त्र मे कोई शक्ति होती है, इस बात से मै न पूर्णत सहमत हूँ और न पूर्णत असहमत हूँ। मन्त्र के प्रति मेरा यह सापेक्ष दृष्टिकोण उस स्थिति मे मन्त्र की उपयोगिता प्रमाणित करता है, जब व्यक्ति अपने सतत प्रवाही पुरुषार्थ, विश्वास और प्रयोग की पृष्ठभूमि पर खडा होकर मन्त्र का उपयोग करता है। 'नमस्कार मन्त्र' जैन विद्या का महामन्त्र है। इस मन्त्र की क्षमता अमाप्य है। मानसिक एकाग्रता, आत्मिक सुख और आत्मस्वरूप की उपलब्धि मे आलम्बन कार्यकर होता है।

नमस्कार मन्त्र की साधना करने से पहले उसके अभिधेय और साधना-पद्धति को जानना बहुत अपेक्षित है। साध्वी राजीमती ने "नमस्कार महामत्र साधना के आलोक मे" नमस्कार मन्त्र की व्याख्या लिखकर अपनी अनुभव-शक्ति और लेखन-शक्ति का उपयोग किया है। श्रद्धालु पाठक इसके माध्यम से नमस्कार महामन्त्र की गरिमा से परिचित होकर इसका प्रयोग करे, यही इस पुस्तक की अर्थवत्ता है।

-- *आचार्य तुलसी*

चुरु,
१०, दिसम्बर, ७६

प्रकाशकीय

जैन धर्म की सभी विचारधाराओ ने नमस्कार महामत्र को स्वीकार किया है। इस महामत्र मे किसी व्यक्ति विशेष की आराधना न करके गुणो के आधार पर आराधना की गयी है। विभिन्न कथाओ एवम् चमत्कारिक घटनाओ ने इस महामत्र की शक्ति को साबित किया है। साध्वीश्री ने सरल एवम् परिमार्जित शब्दो मे नमस्कार महामत्र का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है, परिणाम स्वरूप इसे सहज ही हृदयगम किया जा सकता है।

पुस्तक की उपयोगिता अधिक होने के कारण समय २ पर इसके सस्करण विभिन्न स्थानो मे निकलते रहे है। सन् १९९५ के साध्वीश्री राजीमती के ट्रिप्लिकेन चातुर्मास के दौरान जय साहित्य सस्थान द्वारा एक बार फिर से इस पुस्तक का सस्करण निकालने के बारे मे चिन्तन किया गया। परिणाम स्वरूप यह पुस्तक आप के हाथ मे है। नमस्कार महामत्र पर प्रकाशित यह विवेचनात्मक पुस्तक हर जैन - अजैन के लिए सग्रहणीय एवम् पठनीय है।

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु आर्थिक सौजन्य सर्व श्री टाटिया स्काईलाइन्स एण्ड हेल्थ फार्मस लिमिटेड एवम् सर्व श्री नेमीचन्दजी श्रीचन्दजी छल्लाणी, मायावरम द्वारा दिया गया है। इसके लिए सस्थान उनका सदैव आभारी रहेगा। साध्वीश्री का मार्गदर्शन एवम् प्रेरणा से हमे सदैव सम्बल मिला है।

आर. इन्दरचन्द बोहरा
सह निर्देशक
जय साहित्य सस्थान, मद्रास

प्रस्तावना

नमस्कार मन्त्र जैन परम्परा का महामन्त्र है, जिसकी साधना प्राचीन काल से चली आ रही है। इस मगलमत्र द्वारा लाखो नही, अनेक जीव लाभान्वित हुए है। यह मगल भावनाओ से भरा हुआ है इसलिए जन जन के लिए मगलकारी है।

वैज्ञानिको का कहना है, सूक्ष्म ध्वनि के प्रकम्पन आकाश मे सग्रहित हो जाते है। सचाई तो यह है कि शुभ हो या अशुभ, मगल हो या अमगल प्रत्येक भाव का प्रभाव वातावरण पर छा जाता है। यही कारण है कि अच्छे लोगो के पास बैठने से सुख मिलता है और बुरे लोगो कें पास बैठने पर दु ख एव अशाति का अनुभव होता है।

मगल भावनाओ से भरे शब्दो का बार - बार उच्चारण करने से शक्ति का निर्माण होता है। वही शक्ति मन्त्र कहलाती है। जो व्यक्ति ऐसे शब्दों का, मन्त्रो का उच्चारण करता है वह स्वय मगल बन कर अपने भीतर एव बाहर दोनो ओर मगलभाव की सुख - शान्तिमयी धाराए प्रवाहित करता है।

जो "णमो अरहताण" की शरण मे अपने को समर्पित करता है उसमे अर्हम् की धाराए स्वत चारो ओर प्रवाहित होने लग जाती है। इसलिए जप करते समय स्वय को उस प्रवाह मे प्रवाहित करदे।

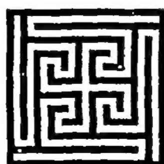
विज्ञान के युग मे श्रद्धा के पीछे जो शक्ति है आज उसे उजागर करने की जरुरत है। यद्यपि इस मन्त्र विद्या का उद्देश्य भौतिक नही होकर मात्र आत्म उन्नयन एव मानव मानव के

कल्याण की कामना से ओतप्रोत है। जो खतरा है वह चमत्कार एव लोकैषणा की वृत्ति का है। इस वृत्ति से बच कर यदि साधना की जाए तो वास्तव मे ही मगलकारी है।

साध्वी श्री राजीमती जी ऐसी ही एक निष्काम साधिका है। जिन्होने अपने गहन अनुभवो को सामान्य जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है। भाषा और प्रस्तुति दोनो का सुन्दर- योग अवश्य ही पाठको को लाभान्वित करेगा। आपकी अब तक की कृतिया साधना प्रिय साधको के लिए उपयोगी रही हैं। इस छोटी सी पुस्तक मे इस महानमत्र के बारे मे आपने जो विस्तृत जानकारी दी है वह साध्वी श्री की विशिष्टता ही मानी जाएगी।

मै ऐसी उत्तम कृति के लिए साध्वी श्री जी को धन्यवाद देता हूँ। और आशा करता हूँ कि पाठक इसका उचित उपयोग कर साध्वीश्री के श्रम को सार्थक करेंगे।

रिषभदास राका
पूना



स्वकथ्य

घटना है राजगीर की, जहा दो मास तक सतत रहने का अवमर मिला। वहा की वासन्ती मद मद हवा ने मन को तो मस्त किया ही इसके साथ एक आत्म प्रेरणा हुई कि क्यो नही वर्तमान सदर्भ मे महामत्र की वैज्ञानिक तत्त्वो के साथ व्याख्या की जाए क्योंकि यह मन्त्र जिन शासन मे शीर्षस्थ माना गया है। यदि प्रयोगात्मक दृष्टि से इस पर विचार नही किया गया तो भावी पीढी के प्रश्नो का वैज्ञानिक समाधान हमारे पास नही होगा और मन की स्थिरता के प्रयोग भी।

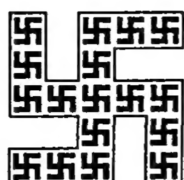
मन्त्र का मतलब है एक प्रकार की चैतसिक उर्जा जो हमारे आभामडल को प्रभावित करती हुई कर्म निर्जरा का निमित्त वनती हे। मन और मन्त्र के धर्षण से पैदा होने वाली तैजस-शक्ति हमारे आसपास जो भी कचरा है उसे जलाए बिना कैसे रहेगी। शरीर और इन्द्रिया, मन और बुद्धि इन सवको प्राणवान बनाये रखने का मोलिक कार्य मन्त्र साधना का है। किन्तु कहा है वर्तमान जैन साधको मे इस मन्त्र की साधना के विधि विधानो की जानकारी। विना विधि से जपा मन्त्र न मन को एकाग्र कर सकता है और न अतीन्द्रिय जगत से सम्पर्क।

इसी रिक्तता को भरने के लिए मेरा तुच्छ प्रयास है। नमस्कार महामन्त्र जो अनन्त अनन्त आस्थाओ का केन्द्र है उस मन्त्र के विषय मे मेरा - - - स्वकथ्य क्या हो सकता है। - - - केवल नमन, नमन, नमन।

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी एव प्रज्ञा के देवता आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी मेरे चिन्मय अस्तित्व के देवता रहे हैं। उनकी असीम अनुकम्पा को मै अपने सामान्य शब्दो से जूठना नही चाहती।

मेरी इस रचना के पीछे पाठको की प्रेरणा एव समय की माग तो रही ही है। इसके साथ सहवर्तिनी साध्वियो का आशातीत सहयोग भूलाया नही जा सकता। इसके अतिरिक्त जय साहित्य सस्थान मद्रास भी तत्पर रहा है।

"साध्वी राजीमती"



अनुक्रमणिका

विषय :

१	नमस्कार महामन्त्र - मौलिक विशेषताएँ	१
२	मन्त्र से महामन्त्र	५
३	महामन्त्र वैज्ञानिक उपयोगिता	८
४	मत्र - परिभाषा	१२
५	पद विश्लेषण	१४
६	नमस्कार महामत्र एक अध्ययन	२२
७	दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा	२३
८	ध्वनि तरगो का सामर्थ्य	२५
९	मत्राक्षरो का शरीर व मन पर प्रभाव	३१
१०	मत्र साधना - क्यो कैसे ?	३३
११	शास्त्रोक्त मन्त्रो के प्रकार	३९
१२	महामन्त्र मे प्रयुक्त बीजाक्षर	४२
१३	क्या मत्र भी अनष्ट करते है ?	४७
१४	मत्रो से रोग चिकित्सा	५१
१५	मन्त्रसिद्धि भावविशुद्धि	५५

१६	स्वर - साधना	६१
१७	महामन्त्र साधना की विधिया	६८
१८	रगो से मानव स्वभाव की पहचान	७६
१९	प्राणायाम महामत्र जप	८९
२०	चैतन्य केद्र जागरण . महामत्र - जप	९३
२१	तीर्थंकर उपासना विधि	९८
२२	मत्र जप आवश्यक निर्देश	१०६
२३	दैनिकचर्या के साथ महामन्त्र जप	११०
२४	जैन साधक का उद्देश्य आत्म- मुक्ति	११२
२५	मत्र दीक्षा क्यो ?	११५
२६	जैन परम्परा मे तत्र और मत्र	११६
२७	एकान्त सब कुछ शान्त	११८
२८	कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्र	१२२
२९	नमस्कार महामन्त्र प्रभावक कथाएँ	१२४
३०	नवकार मन्त्र महिमा	१४७

नमस्कार महामन्त्र :- मौलिक विशेषताएँ

जैन शासन मे आज तक अनेक सम्प्रदाय वने, शाखा-प्रशाखाएँ निकली। उत्तरकालीन जैन साहित्य मे घोर पक्षापक्षी की झलक आयी, तथापि नमस्कार महामत्र की निर्विकल्प आस्था पर कोई असर नही आया। हिन्दु धर्म मे जो स्थान गायत्री मत्र का है और वौद्ध सम्प्रदाय मे जो स्थान त्रिशरण का है, वही स्थान जैन शासन मे नमस्कार महा-मन्त्र का है।

प्रथम विशेषता -- इस महामत्र मे किसी व्यक्ति-विशेष को नमस्कार नही करके ससारवर्ती सभी पारगामी, वीतराग तथा त्यागी आत्माओ को नमस्कार किया गया है। इस मत्र मे प्रयुक्त सभी आत्माएँ पवित्र जीवन की प्रतिमूर्तियाँ है। जो लोग इन निष्काम विभूतियो के स्मरण से कुछ लौकिक अभिसिद्धियाँ पाना चाहते है वे भूल करते हैं, क्योंकि, कुछ मत्र जहाँ कामना करने मे आवश्यक पूर्ति करते है, वहा यह मत्र निष्काम भाव से जप करनेवालो की मनोभावनाएँ पूर्ण करता है।

दूसरी विशेषता - इस मत्र का कोई एक अधिष्ठाता देव नही है, क्योंकि, यह मत्र सभी-शक्तियो के ऊपर है। सव देव इस मत्र के सेवक हैं। फलत जो इस मत्र का लम्वे समय तक सविधि जाप करते है, उनकी कामना-पूर्ति तथा आवश्यक सेवा देव करते है।

जैन मत्रो के इष्ट-देवता (मत्राकृतियो के अधिदेवता) प्रधानत सौम्य, शान्त व अधिक शक्तिशाली होते है, अत इन मत्रो के साधन काल मे हानि की सम्भावनाएँ वहुत कम रहती है। जैनाचार्यो ने तत्र विद्या मे प्रविष्ट होकर भी स्वयं को हिंसा तथा परयत्रणा से वाल-वाल वचायाहै यदि आवश्यकतावश कुछ करना भी पड़ा तो अन्त मे प्रायश्चित्त लेकर स्वय का आत्मशोधन किया है।

तीसरी विशेषता -- सामान्यत दो प्रकार के मत्र प्राप्त होते है -

प्रथम श्रेणी -- जिनकी रचना बीजाक्षरो के द्वारा हुई है।

दूसरी श्रेणी -- जो उच्चारण मे कठिन और गूढ अर्थवाले होते हैं।

यह नमस्कार महामत्र न बीजाक्षरो से निर्मित है और न गूढ अर्थवाला है। इस मत्र की अपनी कुछ स्वतत्र विशेषताएँ है। हम जानते है, इस मत्र की भाषा प्राकृत है, तथापि इसकी सरस और सुबोध शब्द-रचना के कारण एक छोटा-सा बालक भी इसका शुद्ध उच्चारण कर सकता है। बिना किसी प्रयास के इसका भावार्थ जाना जा सकता है; जैसे -

णमो अरिहताण -मै अरिहन्तो को नमस्कार करता हूँ,

णमो सिद्धाण-मै सिद्धो को नमस्कार करता हूँ,

णमो आयरियाण = मै धर्माचार्यों को नमस्कार करता हूँ,

णमो उवज्झायाणं = मै उपाध्यायो को नमस्कार करता हूँ,

णमो लोए सव्व साहूण = मै सब साधुओ को नमस्कार करता हूँ,

सम्भव है कि कुछ लोग यह सोचे, यह मत्र कैसा ? जिसमे न अर्थ-गाम्भीर्य है, न बीजाक्षरो का योग है और न ही किसी कामना-पूर्ति का सकेत है किन्तु इस तर्क का समाधान बहुत आसान है। यह मत्र बिना किसी बीजाक्षर के सब सिद्धियो का

द्वार खोलता है। जो मत्र किसी एक ही प्रकार की सिद्धि मे सक्षम होता है, उसके साथ बीजमत्रो का योग अनिवार्य है, किन्तु, इस मत्र के द्वारा दुष्ट शक्तियो का आह्वान नही, अपितु निग्रह होता है। वैरी के प्रति घृणा नही, किन्तु अनायास प्रेम की पावन धारा बहने लगती है। यह मत्र आपको सकट से बचाता है, किन्तु, किसी विपक्षी को सकट मे डालकर नही। इस मत्र के पाँचो ही पात्र अहिंसा, सत्य तथा अपरिग्रह के उत्कट साधक है। इनके शुद्ध जाप से हिसक मनोवृत्तियाँ क्षीण होती है। फलत अहिंसा के प्रति आन्तरिक अनुराग जागृत होता है।

चौथी विशेषता - जिस नमस्कार महामत्र को १४ पूर्वो का सार माना गया है, उसके स्त्रष्टा कौन ? इस प्रश्न के उत्तर मे तीन बाते कही जा सकती हैं -

१ यह नमस्कार महामत्र अनादि मत्र है। प्रवाह परम्परा के अनुसार इसका ओर-छोर निकालना सर्वथा असम्भव है।

२ इसके रचयिता स्वय तीर्थंकर भगवान है। उनकी वाणी के साथ इसका अकाट्य सम्बन्ध है। महानिशीथ मे इसे "महाश्रुत स्कन्ध" कहकर सम्बोधित किया है, जबकि श्रीमुख से उच्चरित शेष सारा वाडमय 'श्रुत-स्कन्ध' कहलाता है, किन्तु महाश्रुत स्कन्ध नही। जैन आगमो के सभी प्रमुख श्रुत स्कन्धो का मगलाचरण इसी महामत्र के द्वारा हुआ है। कलिग सम्राट महाराज खारवेल के शिला-लेखो का प्रारम्भ भी इसी नमस्कार महामत्र के प्रथम दो पदो से होता है।

३ गणधरो की रचना है। ऐसी एक धारणा मिलती है।

पॉचवी विशेषता - तत्र साधना मे प्रत्येक मत्र की आराधना कठिन हो जाती है, किन्तु, नमस्कार महामत्र की साधना सुखकर, शाति-प्रद और अभयकारक है। इसके साधन काल मे न किसी आसुरी शक्ति के कुपित होने का डर रहता है और न ही घर से बाहर जाना आवश्यक होता है। जबकि तत्र-सिद्धि मे निम्नोक्त चारो विधियो मे से किसी एक विधि का होना अनिवार्य माना जाता है·-

श्मसानपीठ, शवपीठ, अरण्यपीठ और श्यामापीठ। किन्तु, महा-मत्र की आराधना के लिए किसी एक की भी अनिवार्यता का कही उल्लेख नही है। हॉ, अरण्यपीठ (एकान्त स्थान) का ध्यान मत्र साधना मे अवश्य रखा जाना चाहिए।

卐 卐 卐

अर्हम्

" अ " कुडलिनी (तेजस्) का स्वरूप है।
" र् " अग्निबीज है। इससे बुरे सस्कार क्षीण होते है।
" ह " आकाशबीज है। इससे चिदाकाश अनुभव होता है।
" म् " एक झकार है। इससे ज्ञान ततु सक्रिय होते है।

मन्त्र से महामंत्र

नमस्कार महामन्त्र जैन शासन की प्रतिष्ठा है। इस मन्त्र मे अपनी कुछ मौलिक विशेषताए है। काल के साथ इसका महत्त्व घटा नही अपितु आज तक बढता रहा है। आगम की भाषा मे (१४) पूर्वो का सार कहकर इसे अभिनन्दित, वर्णित किया गया है। (१४) पूर्वों के सार से तात्पर्य है, विश्व की सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञानराशि जिनमे सगृहीत है वह ज्ञानकोश। विशेष बात तो यह है कि दुनिया मे प्रचलित सभी विशिष्ट वर्ण-सयोजनाए मन्त्र कहलाती है, जब कि यह महामन्त्र कहलाता है। प्रश्न होता है कि एकमात्र यही महामन्त्र क्यो ?

इसके समाधान मे कुछ बाते सुझाई जा सकती है -

- जिन मन्त्राक्षरो से अन्य छोटे-बडे मन्त्रो को (बीजमन्त्र) जन्म दिया जा सकता है वह महामन्त्र होने की योग्यता धारण करता है।
- ओम ह्री श्री तीनो बीज मन्त्र इसी मन्त्र से बनते है।
- महामन्त्र जिसे अपनी शक्ति बढाने के लिए अन्य बीजमन्त्रो का योग नही चाहिए। यद्यपि कुछ जैनाचार्यों ने इस मन्त्र के साथ भी बीज मन्त्रो को जोडने का विधान किया है। यह उसके विकास का उपक्रम है।
- यह महामन्त्र स्त्री, पुरुष एव नपुसक मन्त्र के रूप मे विभाजित नही होता।

  इस महामन्त्र का कोई एक अधिष्ठाता देव एव देवी नही है।
- यह महामन्त्र साधक का सीधा ध्यान वीतरागता की ओर ले जाता है।

- यह पूर्ण पवित्र मत्र है। जो केवल आत्मा के जागरण और विकास की भावनाए उत्पन्न करता है।
- अन्य मन्त्रो मे जहा मनोरथ पूर्ति की बात होती है वहा यह मन्त्र साधक को निष्काम भाव से जपने की प्रेरणा देता है। कामना विजय की बात कहता है।
- यह महामन्त्र आकार मे बहुत छोटा है किन्तु अनेक उपलब्धियो का खजाना है। यह मन्त्र कामना न करने पर ही सब कुछ देता है, मागने पर नही। कामनापूर्ति का मार्ग घूम फिर कर वही ससार का मार्ग बन जाता है जिसे हम त्यागना चाहते है।
- इस महामन्त्र मे हमारे जीवन के सारे उद्देश्य लिखे गये है। दुनिया मे कोई ऐसा मन्त्र नही होगा जिसमे जीवन के उद्देश्य लिखे गये हो। अर्हम् आत्मा का स्वरूप है, सिद्ध आत्मा का पूर्णशुद्ध स्वरूप है। आचार्य चरित्र निर्मलता के प्रेरक है, उपाध्याय ज्ञान के देवता है और मुनि निष्काम सेवा के सवाहक। इससे मेरा तात्पर्य यह है कि नमस्कार महामन्त्र एक मात्र आध्यात्मिक शक्तियो के उन्नयन का हेतु है।
- यद्यपि अनेक प्रकार के मन्त्रो की रचना हुई है। यदि कोई व्यक्ति एक ही मन्त्र के सहारे अपनी नाव पार लगाना चाहे, उसके लिए यह मन्त्र सशक्त आलम्बन है। उसे किसी दूसरे मन्त्र की शरण मे जाने की जरूरत नही है। इसने सबकी नाव पार लगाई है।
- यह मन्त्र इसलिए भी महामन्त्र बन जाता है क्योंकि इसमे चेतना के ऊर्ध्वारोहण की असीम क्षमता है।

इस प्रकार हमने जाना कि यह महामन्त्र हमारा परम उपकारी, सिद्धि दाता है। अन्य मन्त्रो मे जहा एक विशिष्ट शक्ति होती है वहा इस महामन्त्र मे चारो विशिष्ट शक्तिया है -

१ देवाकर्षण शक्ति। ३ लक्ष्मी आह्वान शक्ति।

२ कर्म विकर्षण शक्ति। ४ रोग निवारण शक्ति।

यह जैनो का सार्वभौम मागलिक मन्त्र सम्प्रदायवाद की सभी कट्टरताओ से दूर, जैन एकता का प्रभावी सूत्र है। यह अलौकिकता की ओर ले जाने वाला मन्त्र है। यदि कोई इससे पुत्र, धन, प्रतिष्ठा मागता है तो वह इस महामन्त्र की आशातना करता है। यह मन्त्र वीतराग मन्त्र, परमेष्ठी मन्त्र तथा नवकार मन्त्र के रूप मे सम्पूजित रहा है।

एक दिन स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानद, से कहा -- मा से कुछ माग क्यो नही लेते ? विवेकानद ने कहा - गुरुदेव ! मै जाते समय कुछ जरूर सोचता हू परन्तु प्रार्थना मे बैठने के बाद मागने की बात बिल्कुल भूल जाता हू। उस अवस्था पर पहुचने के बाद कोई कामना शेष ही नही रहती। भीतर से भर जाता हू। रामकृष्ण बोले, बस, तेरी प्रार्थना सिद्ध हो गई।

मत्र का जाप व्यक्ति को ससार से विमुख नही करके ससार के प्रति, ससार के कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक करता है। बिखरी चित्त-वृत्तियो को एकाग्र करता है। आवश्यकता है कि हम मत्र की रचना को, उसके विज्ञान को समझें। मत्र की महिमा गाने से मत्र सिद्ध नही होता। मत्र-सिद्धि के लिए चाहिए मत्र-रचना का, मत्र-शरीर का, मत्र की ध्वनि और स्वरो का पूरा ज्ञान।

हम मत्र की नही, महामत्र की चर्चा कर रहे हैं। महामत्र जिसके पास होती है विराट सकट-निवारण-शक्ति, लक्ष्मी-आह्वान शक्ति देवाकर्षण तथा कर्म-निर्जरा की शक्ति।

महामन्त्र : वैज्ञानिक उपयोगिता

हमने शास्त्रो मे पढा है कि जिनके मन और वाणी का अन्तर समाप्त हो गया है। और जो अपनी मौन भाषा तथा जागृत मन के द्वारा, जो प्रकम्पन धरती के गुरुत्वाकर्षण के साथ स्थिर हो गये है, उन्हे भी आकर्षित एव प्रभावित कर सकते है, ऐसी परामानसिक चेतना वाले लोग सफल मत्र-स्त्रष्टा कहलाते हैं।

मन के जागृत होने के बाद किसी माध्यम की अपेक्षा नही रहती। मन के सकल्प मात्र से देश काल की सीमा के पार स्थित अणु मात्र को प्रभावित किया जा सकता है। इसीलिए मन और वाणी की प्रभावक-शक्ति को स्वतत्र मत्र-विद्या का रूप दिया गया है। कहा भी है --

बहिर्मुखस्य, वृत्तयो या प्रकीर्तिता ।
ता एवान्तर्मुखस्यास्य, शक्तय परिकीर्तिता ॥

चित्त की बहिर्मुखता मे जो वृत्तिया कहलाती है, वे ही वृत्तिया चित्त की अन्तर्मुखता मे शक्तिया बन जाती है। कालान्तर मे ये ही जागृत-मानस-शक्तिया नित्य नये रहस्यो का उद्घाटन करती है ।

मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे हुई सम्मोहनविद्या सबधी अब तक की प्रगति ने यह पूर्ण प्रमाणित कर दिया है कि व्यक्ति अपने जागृत मन के किसी भी भाग से बिना किसी भौतिक आलम्बन की सहायता के जड और चेतन दोनों प्रकार के पदार्थो को प्रभावित कर सकता है।

रूस के शरीर-शास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो लियोनिद वासिलियव ने एक अपूर्व प्रयोग किया। एक बार उन्होंने कई मील दूर एक प्रयोगशाला के कुछ वैज्ञानिकों को परामानसिक संचार (टेलीपैथी) द्वारा सम्मोहित कर दिया। फलत उनसे चालू प्रयोग छुड़वा कर उन्हें किसी अन्य काम में लगा दिया। वे सब अनजान में उनके सब आदेशों का पालन करने लगे। वे यह अनुभव तक नहीं कर सके कि हम किसी के द्वारा प्रेरित किये जा रहे हैं। यह हुई अपनी जागृत चेतना से किसी दूसरी चेतना को बिना किसी माध्यम के प्रभावित करने की बात। इस प्रकार जड़ को भी प्रभावित किया जा सकता है।

एक सम्मोहन कर्ता ने किसी सम्मोहित व्यक्ति के हाथ ठडे पानी में डाल दिये और उसे कहा गया कि, "तुम अनुभव करो, पानी खौल रहा है। सचमुच उसे वैसा अनुभव होने लगा। हाथ खींच लिए। देखा गया, हाथ पर छाले उभर आए हैं।" इस प्रकार हमने जाना कि मन और पदार्थ (जड और चेतना) दोनों स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित किये हुए हैं।

धार्मिक धरातल तक ही सीमित था किन्तु आज वह सूक्ष्म-ध्वनि (मन और प्राणो की ध्वनि) वैज्ञानिक तत्त्व बन गयी है। चिकित्सा क्षेत्र मे इसका अद्‌भुत प्रयोग हुआ है, किन्तु दर्शन और धर्म के प्रति प्राचीन इतिहास की जानकारी रखने वाले लोगो के लिए यह विस्मयकर नही है। आज जो कार्य यन्त्रो के द्वारा हो रहे है वे सब कार्य तथा उनसे बहुत अधिक कार्य विकसित चित्तशक्ति, वाग्‌विद्या, (मत्र शक्ति) तथा विचार - विद्या द्वारा हमारे पूर्वज (जागृत मस्तिष्क वाले) किया करते थे, क्योंकि उनका जीवन जड और चेतन दोनो ही परीक्षणो के लिए एक सक्रिय प्रयोगशाला था।

प्राचीन भारतीय चित्त-विशेषज्ञोंने जप और आलाप को दार्शनिक तथा वैज्ञानिक तत्त्व कहा है। उनकी धारणा मे देव-दर्शन और कामना पूर्ति का आधार ये शब्दाकृतिया ही है। भारत मे बहुत पहले से राग-रागनियो के रग और आकार का पता लग चुका था।

लार्ड लिटन के कमरे मे एक नर्तकी मस्ती से बाजे पर राग अलाप रही थी। धीरे-धीरे चारो ओर सर्पाकृतिया उभर आयी। दूसरा आलाप हुआ, भिन्न प्रकार की आकृतिया नाचने लगी। कुछ क्षणो के बाद आलाप बन्द हुआ, आकृतिया गायब हो गयी।

फ्रास मे दो बार ऐसे परीक्षण हुए। प्रथम परीक्षण मे भारतीय गायक और एक जपयोगी महात्मा थे। जिनके शरीर मे पच्चीस मिनट के बाद क्रमश उष्णाक और शीताक तीन चार डिग्री तक पहुॅच गए। जड समाधि का एक कारण यही शीताक-वृद्धि है।

बार बार अपने श्रद्धेय का नाम जपते-जपते उनका आकार ध्यानावस्था में सामने आकर नाचने लगता है। यह क्या हमारी श्रद्धाशील विचार तरंगों का ही परिणाम नहीं है? जिन्होंने आज तक अपने इष्ट से साक्षात बातें की, समाधान पाये, उन सब घटनाओं का एकमात्र आधार हमारी जपाकार (सकल्पाकार) चेतना ही है।

मुख्यतः मंत्र जाप से होने वाले लाभ तथा चमत्कार के चार कारण सुझाए जा सकते हैं -

१. मंत्र स्रष्टा का आध्यात्मिक बल

२. शब्दों का अपना सामर्थ्य

३. ध्वनि प्रकंपन

४. शब्दाकृतियों के नायक - अधिदेवता।

❊ ❊ ❊ ❊ ❊

वैराग्य उत्पन्न होता है।

- *निगोद का वर्णन सुनने से।*
- *नरक का वर्णन सुनने से।*
- *अपना पूर्वभव सुनने से।*
- *पराया पूर्वभव सुनने से।*
- *आकस्मिक घटना से।*
- *स्वार्थमयी विडम्बना से।*
- *शव दर्शन से।*
- *आत्म चिंतन से।*
- *पदार्थ परिवर्तन से।*

मंत्र - परिभाषा

अक्षरो के सयोजन विशेष का नाम मत्र है। शब्द शास्त्र के अनुसार "मत्रि गुप्त भाषणे" से मत्र शब्द बना है जिसका अर्थ है गुप्त भाषण और रहस्य की साधना। निरुक्त के अनुसार "मननात् इति मत्र" से यह ध्वनित होता है कि जो बात मनन करने योग्य है वह मत्र-शक्ति का रूप है।

"मननात् सर्व भावाना, त्राणात् ससार सागरात्।
मत्र रूपाहि तत् शक्ति, मननत्राण रूपिणी"॥

मनन करने से प्रत्येक साधारण बात असाधारण बन जाती है। जो कार्य प्रयत्न से नही बनता, वह एक बार किये गये मानसिक सकल्प से बन जाता है। इसी आधार पर प्रभावशाली वाणी और प्रभावक विचार शक्ति को क्रमश वाग् विद्या और विचार-विद्या का रूप दिया गया है। यह विद्या-शब्द, मत्र का वाचक है। (वाग् वै मत्र शब्दो वै देव)

शास्त्रो मे वर्णन है कि सम्यक् प्रकार से साधा हुआ एक ही शब्द भौतिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार की अभिसिद्धियो के द्वार खोलता है।

"एक शब्द सम्यक् ज्ञात सुप्रयुक्त ,
स्वर्गे लोके च कामधुक्"।

शब्द शास्त्र के अनुसार मत्र शब्द 'मन्' धातु मे त्र प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ है 'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मत्र, अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का ज्ञान किया जाए, वह मत्र है।

लगता है, आठवी शती तक पहुचते-पहुचते मत्र शब्द के अर्थ का कुछ विस्तार हुआ है। उसके बाद पचपरमेष्ठी और शासन-देवता दोनो की आराधना का माध्यम मत्र मान लिया गया।

'मन्यते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिता आत्मान वा यक्षादि शासन देवता अनेन इति मत्र - जिसके द्वारा पाच परम-पवित्र आत्माए तथा यक्षादि शासन देवताओ का सम्मान किया जाए, वह मत्र है। इस प्रकार हमारे युग तक मत्र शब्द की विविध परिभाषाए हो गई।

सभी धर्म सम्प्रदायो मे मत्र साधना की परम्परा रही है। मत्र साधक के पास मुख्य तीन शक्तिया होती है -- आत्म-शक्ति, मत्र-शक्ति, इष्ट-शक्ति।

मत्र केवल वर्णात्मक सयोजन का नाम नही, किन्तु वर्ण के साथ सकल्पित चित्त की सयोजना का नाम है। यह तब होता है जब उसके साथ आराधक का चित्त एकात्मक हो जाता है। शिव-सूत्र विमर्शिनी मे कहा है -- चित्त मत्र -- बाह्य क्रियाओ से अभिन्न चित्त ही मत्र है। मत्र और साधक का सूक्ष्म शरीर जब तक एक रूप नही हो जाते, तब तक न साधक सफल होता है और न मत्र। मत्र कितना शक्तिशाली, प्राणवान है, इससे कही अधिक विचारणीय यह है कि मत्र-साधक की प्राण-ऊर्जा कितनी प्रबल है।

पद विश्लेषण

श्वेताम्बर परम्परा मे मुख्यत "अरिहन्ताण" पद का प्रयोग मिलता है और कही-कही "अरहन्ताण" तथा "अरूहन्ताण"। शब्दार्थ की दृष्टि से दोनो परस्पर भिन्न है, किन्तु, तात्पर्य मे तीनो समानार्थक है।

(१) अरिहन्ताण - सस्कृत धातु-कोष के अनुसार कुछ ऐसी धातुएँ है, जो अनेकार्थक है, जैसे "अर्हपूजायाम् इन्द्र निर्मितां अतिशयवति पूजा अर्हती अर्हन्" जो लोक मे सर्वोत्तम पूज्यता प्राप्त करते है तथा इन्द्रादि देव जिनकी पूजा-सेवा करते है।

(२) अरिहन्ताण - "अरिहननात् अरिहन्त अरीन् राग द्वेषादीन् हनन्तीति अरिहन्ता"

जिन्होने राग-द्वेप रूप मोह शत्रु का नाश किया है, वे तीर्थंकर भगवान अरिहन्त कहलाते है।

(३) अरिहन्त - "कर्मारि नाशने अर्हतीति अर्हन्" - जो कर्म शत्रुओ के नाश करने मे समर्थ है, वे अरिहन्त कहलाते हे।

इस प्रकार, अरिहन्त शब्द के तीन अर्थ होते हे।

अरहन्त - "रहस्य अभावात् वा अरहन्ता" - जिनके लिए इस ससार में कोई अज्ञेय नही है, वे सर्वज्ञ भगवान "अरहन्त" कहलाते हे।

अरुहन्त - "न रोहति-नोत्पद्यन्ते दग्ध कर्म बीजत्वात् पुन ससारे नोजायन्ते इत्यरुहन्त" कर्मरूप कारण के सर्वथा नष्ट हो जाने के बाद जैन अरिहन्त जन्म मरण क्रिया नही करते। इसलिए जैन परम्परा मे अवतारवाद की मान्यता नही है।

सामान्य शब्दार्थ की दृष्टि से प्रत्येक सर्वज्ञ वीतराग का प्रथम पद मे समावेश होता है, किन्तु यहाँ अरिहन्त पद से केवल तीर्थंकर भगवान का ही ग्रहण किया गया है।

सामान्य केवली और तीर्थंकर - अरिहन्त का अन्तर -

(१) अरिहन्त-देवो के द्वारा जिन्हे पूजा-अर्चा तथा अतिरिक्त अनुकूलताएँ प्राप्त होती है।

(२) जिन्हे विशेष शारीरिक सम्पदा प्राप्त होती है।

(३) जिन्हे विशिष्ट प्रवचन-कौशल प्राप्त होता है।

(४) जो नयी शासन-व्यवस्था देते है।

(५) जिनके अघाति कर्म भी एकान्त शुभ (वेदनीय सिवाय) होते है।

जैन दर्शन के अनुसार तीर्थंकरो के ज्ञान-दर्शन का आवरण तथा मोहान्तराय का बंधन सर्वथा क्षय हो जाता है। ज्ञानावरण की क्षीणता से केवल ज्ञान प्राप्त होता है, दर्शनावरण की क्षीणता से केवल-दर्शन, मोह की क्षीणता से आत्मानन्द और अन्तराय की क्षीणता से शक्ति सम्पन्नता प्राप्त होती है।

तीर्थंकर अध्यात्म-चेतन के चरम शिखर पर आरूढ होते है। इसी अवस्था का नाम "तुरीयदशा" है।

जो आत्मदोषो का सर्वथा क्षय करके निजात्म रूप मे अवस्थित हो गए है, इस पद मे उन्हे नमस्कार किया गया है। इसमे दो शब्द है -- " सित् " और " धा " सस्कृत-धातु-कोष के अनुसार " सित् " का अर्थ बन्धन है और " धा " का अर्थ है -- नाश करना, जिन्होने आठो कर्म बन्धनो का सदा के लिए क्षय कर दिया है।

" सिद्धाः कृत कृत्याः सिद्ध साध्याः वा "

साध्य और साधन इस द्वयी की भिन्नता को समाप्त करके जहाँ दोनो (साध्य-साधन) एकात्मक हो जाते है, वह चैतन्य जागरण की परम भाव दशा है। इस स्वरूपावस्थित आत्मभाव का नाम ही सिद्धि, मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण और परिनिर्वाण है।

कर्मावरण की स्थिति मे कोई भी आत्मा पूर्णत स्वतन्त्र नही होती। महावीर के शब्दो मे प्रत्येक आत्म-साधक परतन्त्रता के निदान की खोज मे निकलता है। जैसे-जैसे आन्तरिक पराधीनता उसके समझ मे आती है, वैसे-वैसे वह बाहर और भीतर दोनों ओर से मुक्त होता चला जाता है। इस क्रम से प्राप्त होनेवाली पूर्ण स्वतन्त्रता ही सिद्धावस्था है।

अरिहन्त अवस्था मे जो विशिष्ट आत्म गुण प्रगट होते है (अनन्त, ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बल) वे सिद्धावस्था मे दुगुने अर्थात् आठ हो जाते है।

आचार्य मुनिपद से भिन्न नही होते। उसी पद का विकसित रुप आचार्य पद है; किन्तु प्रथम पद के कुशल प्रवक्ता होने के कारण उन्हे स्वतन्त्र पदाधिकारी माना गया है। सिद्ध पद की गरिमा का बखान जैसे अरिहन्त करते है, वैसे अरिहन्तो की अनुपस्थिति मे आचार्य उनके शासन की सेवाओ मे सतत रत रहते हैं, मुमुक्षु जीवो का मार्ग-दर्शन करते है।

आचार्य पद का निर्वाचन करते समय कुछ बातो पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जैसे

(१) श्रुत-सम्पदा,
(२) आगम-ज्ञान-सम्पदा (बहुश्रुता),
(३) निर्मल आचार सम्पदा,
(४) मन्त्र ज्ञान,
(५) स्व-मत और पर-मत दोनो की जानकारी,
(६) अविचल धृति,
(७) कुशल प्रवक्ता
(८) गणहित-चिन्ता,

मुख्यत आचार्य भगवान मे ३६ गुण पाये जाते है, जैसे-

५ महाव्रत साधना
४ कषाय विजय
५ इन्द्रिय विकार विजय
५ समिति साधना
३ गुप्ति की आराधना
९ नव विधि से ब्रह्मचर्य-साधना
५ आचार पालना

इत्यादि अनेक गुणों के धारक आचार्य भगवान को प्रात सायं दो बार भाव से अभिवन्दन अवश्य करना चाहिए।

णमो उवज्झायाणं

छेद सूत्रों में आचार्य के साथ उपाध्याय का योग अनिवार्य बताया गया है। आचार्य को उपाध्याय के बिना विहार नहीं करना यहाँ तक लिखा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आचार्य के द्वारा सम्पादित किये जानेवाले कुछ कार्यों को उपाध्याय सम्पन्न करते हैं। विशेषत अध्ययन-अध्यापन कार्य उपाध्याय के अधीन होते हैं।

उपाध्याय का दूसरा कार्य है -- आचार्य के द्वारा दिए गये प्रवचनों की ततकाल व्याख्या करना, विश्लेषण करना। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में प्रोफेसर और शिक्षक का जो स्थान है, वही गणाचार्य और उपाध्याय का है। आचार्य सूत्र में संक्षिप्त तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं और उपाध्याय अर्थ का विस्तार करते हैं। श्रमणत्व का जहाँ तक सवाल है आचार्य और उपाध्याय में लगभग समान होता है, अन्तर केवल दायित्व-विस्तार का है।

३. जो मुमुक्षु जीवो को आधि (मानसिक पीडा) से मुक्त करके उन्हे स्वस्थ, शान्त तथा निर्विकार बनाते है।

४ अरिहन्त शासन काल से चली आ रही श्रुत सम्पदा को अविच्छिन्न बनाए रखना उपाध्याय का कार्य है।

णमो लोए सव्वसाहूणं

साध्यन्ति -- " शुद्धात्मा स्वरुप इति साधव "

जो मुनि पच महाव्रत-पालक, अठारह सहस्त्र गुण-धारक तथा परमोपकारक है, वे परमेष्ठी पद योग्य है, फिर चाहे वे श्वेताम्बर मुनि है या दिगम्बर मुनि। मुनित्व का कारण वेश नही, किन्तु, जीवन मे व्याप्त निष्कषाय भाव है।

प्रश्न यह होता है, जब पूर्वोक्त चारो पदो मे न 'लोए' शब्द का प्रयोग है न 'सव्व' शब्द का तो केवल अन्तिम एक पद मे ही अतिरिक्त इन दो शब्दो का प्रयोग क्यो ?

उत्तर-- 'लोए' शब्द से यह स्पष्ट किया गया है कि जो मुनि देवशक्ति, केवली-समुद्घात तथा लब्धि विशेष के द्वारा मर्त्य लोक के सिवाय कही चले गये है, वे मुनि भी वन्दनीय तथा अर्चनीय है।

कुछ टीकाकारो का अभिमत है कि जो मुनि मनुष्य लोक से बाहर है, उन्हे छोडने के लिए 'लोए' शब्द का प्रयोग किया है, अर्थात् मनुष्य लोकवर्ती मुनि ही वन्दनीय है। "सव्व" क्यो ?

१ जैन साधना पद्धति के अनुसार स्थविर-कल्पिक, जिन-कल्पिक, एकल बिहारी, यथालन्दक आदि मुनियो के कई प्रकार प्राप्त होते है, उन सब प्रकारो को अपने मे समाहित करता है 'सव्व' शब्द।

२ 'सव्व' शब्द का सस्कृत रुप सर्व और सार्व-बनता है। सार्व का अर्थ होता है "अरिहन्त" जो सार्व के साधु अर्थात् अरिहन्तो के साधु है। वे परमेष्ठी है। पूर्वोक्त चारो पदो मे प्रकार भेद नही होता, क्योंकि, सिद्ध और अरिहन्तो मे साधना जनित कोई अन्तर नही है तथा आचार्य और उपाध्याय की सघीय उपयोगिता के आधार पर नियुक्तियाँ होती है। अत उनमे "सव्व" शब्द की अपेक्षा नही है। यह व्यवस्था मात्र सघीय सुव्यवस्था के लिए है। ग्रन्थकारो ने यह भी लिखा है कि "आन्त्यात् पूर्वम्" जो विशेष दो शब्द अन्तिम पद मे प्रयुक्त हुए है, उन्हे सभी पदो मे अर्थत समझ लेना चाहिए, क्योंकि, जो तीर्थंकर सिद्ध और आचार्य उपाध्याय हो गये है, वे सब वन्दनीय है,जो साधना सम्पन्न कर चुके है, वे भी और जो कर रहे है, वे भी।

वास्तविकता यह है कि पाँचो पदो मे एक अन्तिम पद ही ऐसा है, जिसे मूल पद कहा जा सकता है, क्योंकि, साधनोचित साधना के पूर्व किसी भी चेतना का सिद्ध, अरिहन्त तथा आचार्य-उपाध्याय के रूप मे आरोहण नही होता। सच तो यह है कि आचार्य और उपाध्याय का पद जैसे आरोपित किया जाता है, वैसे साधु पद का आरोपण नही होता । दिगम्बर परम्परा मे यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि आचार्य, उपाध्याय को जीवन के अतिम दिनो मे मुनि पद मे अवश्य आ जाना चाहिए। बिना इसके मुक्ति नही होती।

मत्र मन शक्ति का सरक्षक है, इस शब्दार्थ के अनुसार प्रत्येक शब्द ध्वनि मत्र-रूपता धारण कर सकती है, किन्तु, यह स्थिति तब बनती है, जब प्रयोक्ता स्वय मे "शब्द चेतना" मात्र रह जाता है। इस तन्मयता के अभाव मे जो मत्र शास्त्रोक्त है, वे भी "अमत्र" बन जाते है, अर्थात् मानसिक शक्ति के सवर्धन मे अक्षम हो जाते है।

प्रश्न है मानसिक चपलता का निवारण कैसे हो ? तन्मय कैसे बना जाय ? इस प्रश्न का समाधान सरल भी है और कठिन भी। जिस मत्र को हम जपते है, यदि उस मत्र के प्रति हमारी सक्रिय आस्था है, मत्राक्षरो का भावार्थ एव शब्दार्थ पूर्णत अभिज्ञात है तथा मत्र-साधन विधियो की आवश्यक जानकारी है, तो मानसिक स्थिरता स्वल्प प्रयत्न से ही सभव है यदि इन तीनो तत्त्वो का एक साथ योग नही बना, तो मत्र सिद्धि के योग्य स्थिरता का होना असम्भव है।

इस प्रकरण मे पायेगे कि मत्राक्षरो का शब्दार्थ-विवेचन तथा वीतराग-आत्माओ का विश्लेषण-स्वरूप वर्णन। नमस्कार महामत्र के पॉच पद है। प्रथम दो पद और अन्तिम एक पद इस मत्र के मूल पद है, शेष दो पद अन्तिम पद के विस्तार रूप है। आचार्य और उपाध्याय साधु पद से सर्वथा भिन्न नही होते। इनकी स्वतन्त्र-व्यवस्था का आधार केवल सघीय उपयोगिता है। सघवद्ध-साधना के लिए सगठन आवश्यक होता है और सगठन के लिए एक कुशल नेतृत्व। आचार्य और उपाध्याय अर्हत शासन की सयुक्त सेवाएँ करते है। आचार्य का मुख्य कार्य हे -- आचार-विशुद्ध की ओर गण को गतिशील करना ओर उपाध्याय का कार्य है, आत्मज्ञान-आगमज्ञान की ओर सघ को प्रेरित करना।

दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा

नमस्कार महामत्र की महत्ता के विषय मे दोनो ही परम्पराएँ एकमत है। थोडा बहुत जो भेद प्राप्त होता है, वह मात्र उच्चारण - स्पष्टता और व्याकरण-भेद के कारण है, जैसे --

१ "णमो आइरियाण" दिगम्बर परम्परा मे प्रचलित है और "णमो आयरियाण" श्वेताम्बर परम्परा मे प्राप्त होता है। दिगम्बर साहित्य मे शौरसेनी प्राकृत व्याकरण का अधिक प्रयोग हुआ है और श्वेताम्बर साहित्य मे मागधी व्याकरण का। इसी व्याकरण-भेद के कारण 'इ' और 'य' का अन्तर है।

२ श्वेताम्बर साहित्य मे कही "णमो" के स्थान पर नमो मिलता है। इस भेद का कारण भी एक व्याकरणिक सूत्र है। शौरसेनी मे, 'न' का 'ण' अनिवार्य आदेश है और मागधी मे विकल्प से होता है।

३ 'अरिहन्ताण' और 'अरुहन्ताण' मे शब्दार्थ भेद अवश्य है, किन्तु, मूलार्थ मे कोई अन्तर नही है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि नमस्कार महामत्र की मौलिक आदेयता मे कोई मतभेद नही है। सचमुच यह मत्र जैन एकता की प्रतिष्ठा भूमि रहा है।

इस महामत्र के आत्मगत होने के बाद सम्यग् दर्शन से परिलक्षित शम, सवेग, आस्तिक्य आदि आत्मधर्म व्यवहार की भूमिका पर उतर आते है। जैन साधक के लिए सर्वप्रथम इसी "महामत्र योग" की साधना के सहारे अन्तर्नाद, अन्तर्नाद से

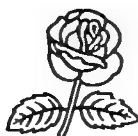
निर्विचारता और निर्विचारता से समाधि रूप ध्यान तक पहुँचना है। हमारे ऋषियो ने कहा है कि शब्द की चोट से राग-द्वेष की ग्रथियो को सर्वथा आहत किया जा सकता है और इसी आघात-प्रत्याघात की प्रक्रिया से साधक, जीवन के अन्तिम ध्येय मोक्ष-तक पहुँच सकता है। यह "पदार्थ-ध्यान" का व्यावहारिक प्रयोग है।

यह महामत्र किसी सबल चेतना के साथ सयुक्त होकर अपनी विद्युत-ऊर्जाएँ तेजी से विकीर्ण करता है। इन्ही विकीर्ण ऊर्जाओ की क्षमता के अनुसार साधक क्षणिक और स्थायी- दोनो-प्रकार के लाभ को प्राप्त करता है।

क्षणिक लाभ - धन, सत्ता, स्वास्थ्य, सुयश, स्वर्ग तथा विविध प्रकार की भौतिक, अभौतिक अभिसिद्धियो की प्राप्ति।

स्थायी लाभ -- आत्म शुद्धि तथा आत्म शान्ति की प्राप्ति।

यह मत्र, सब मगलो में पहला मगल इसीलिए माना गया है कि इसके सविधि जाप से सब प्रकार की विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती है।



ध्वनि तरंगों का सामर्थ्य

शब्द तब बनता है जब उसका उच्चारण होता है। समूचे मन्त्र शास्त्र का विकास उच्चारण के आधार पर हुआ है। वर्तमान खोज के अनुसार एक शब्द का उच्चारण हमारे मस्तिष्क मे अल्फा तरग पैदा करता है। जिससे मन तत्काल शान्त हो जाता है। एक शब्द ऐसा भी होता है जिससे थ्रेटा और वीटा तरगे पैदा होती है। यदि आपका मन शान्त है तो आप सुखमय तरगो से आसपास के वातावरण को पूर्ण सुखायित कर सकते है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी ने एक जगह लिखा है कि ओम् और बीज मन्त्रो के सविधि उच्चारण से बहुत बडा फायदा उठाया जा सकता है। ये तरगे हमारे अन्त स्रावी ग्रथितत्र को सतुलित करके हमे स्वस्थ एव शान्त जीवन का वरदान दे सकती है।

ध्वनि की ताकत से हम सब अति परिचित है। एक ध्वनि व्यक्ति को पागल बना देती है और दूसरी सजग, स्वस्थ ध्वनि से कर्म विस्फोट, प्रमोद भाव का जागरण, सुख के स्पन्दन, आख जैसे अग का आपरेशन, कही दबी-छुपी ट्यूमर का पता, गर्भ के रोगो का निदान एव निवारण, पीडा रहित प्रसव हृदय रोगो की ध्वनि से जाच, ध्वनि उच्छ्वास से आन्तर अवयवो की मालिश, तत्रिका कोशिकाओ मे प्रकम्पन, अन्त स्रावी ग्रन्थियो पर प्रभाव, आचरण परिवर्तन, चिन्तन - परिवर्तन, दिव्य - अुनभूतिया। इसके विपरीत यदि ध्वनि मृदु नही होकर कठोर है, तेज है तो विपरीत लाभ भी उठाया जा सकता है। इसी का नाम ध्वनि प्रदूषण है।

अत मन्त्र, स्तुति, सगीत जैसे सभी उच्चारणो मे उपरोक्त प्रभाव देखा जा सकता है।

सबसे बडी बात मन्त्र से हमारा इम्यून पावर बढकर हमारे चारो ओर सुरक्षा कवच बना देता है। जिससे हम हर बडी से बडी बीमारी से मुकाबला ले सकते है।

शब्दो का सामर्थ्य -

किसी व्यक्ति ने स्वामी विवेकानद से कहा -- शास्त्रो मे क्या धरा है ? यह तो शब्दो का जाल मात्र है। विवेकानन्द ने उसे रोकते हुए कहा - मूर्ख ! कैसी पागल सी बाते करता है ? मूर्ख शब्द सुनते ही वह उबल गया ! बोला, आपने मुझे मूर्ख कैसे कहा? विवेकानन्द मुस्तकराते हुए बोले, तुम तो कह रहे थे ना शब्दो मे क्या धरा है ? उनमें कोई ताकत थोडी ही होती है। यह सुनते ही सिर झुक गया।

प्रत्येक शब्द मे अपनी स्वतत्र शक्ति होती है। जिसे कवि, साहित्यकार और कुशल प्रवक्ता प्रकट करके दिखाते है। सामान्य व्यक्ति हजारो अक्षरो का जोड-तोड करके भी वैसा अनुकूल योग नही बिठा सकता। शब्दो मे विभिन्न रसो का सचार इसी वर्ण -विन्यास के कारण होता है। हमने देखा है, एक स्वर - लहरी से सब आनन्दित हो उठते है, और उसी वाद्यन्त्र पर छेडी गयी दूसरी तान से सब रो उठते है । एक शब्द प्राणो से खेलने के लिए योद्धा को उद्यत करता है और उससे विपरीत एक शब्द समरागण से भाग छूटने की स्थिति उत्पन्न कर देता है। महाभारत की घटना है, कर्ण के सारथि ने कुन्ती को एकबार यह वचन दिया था कि युद्ध मे कर्ण द्वारा अर्जुन की हार नही

होने दूगा। उसने एक मार्ग निकाला जब अर्जुन बाण छोडता तब वह खुशी से झूम उठता। बोलता -- वाह अर्जुन! जब कर्ण निशाने पर बाण छोडता तब सारथि झिडकते हुए कहता "छि छि"। इस प्रकार के निराशाजनक और उत्साह वर्धक वाक्यो के योग ने एक को हरा दिया और एक को विजयी घोषित करवा दिया। अवसर का एक वाक्य स्वय का बोध कराता है और एक वैसा ही अन्य वाक्य सोए अह के नाग को जगा देता है। वस्तुत आदमी के मनोविज्ञान मे सबसे अधिक और सबसे शीघ्र परिवर्तन लाने वाला यह शब्द ही है।

शब्द को ब्रह्म तक कहा गया है, क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ प्रत्येक जागृत-चेतना, ध्वनि-प्रकपन के रूप मे ब्रह्माण्ड मे व्याप्त रहती है। उस शब्द शक्ति की उपासना ही सत्य और आलोक की उपासना है, ऐसा एक अभिमत है।

प्रत्येक उच्चारित शब्द का शारीरिक अवयवो, मस्तिष्क तन्तुओ तथा मानसिक सरचना पर निश्चित असर होता है। दिगम्बर साहित्य मे भोजन बेला के कुछ विघ्न बताए गए है- उनमे एक विघ्न है - यदि भोजन करते समय अत्यन्त कठोर, क्रूर अथवा करुणा पूरित रुदन और विलाप के शब्द सुनाई पडे तो तत्काल भोजन - क्रिया को बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि इससे भोजन तथा मन इन दोनो पर बुरा प्रभाव पडता है। ऐसे क्षण स्वाध्याय और ध्यान मे लीन होने के लिए ही होते हैं।

प्राचीन जैन साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है, उस समय के जैन श्रमण-समुदाय मे शब्द चिकित्सा और शब्द-परीक्षा विधि प्रचलित थी। कई जैनाचार्य अपने शिष्यो की मन

स्थिति का परीक्षण, उनके रचना-कौशल तथा सहज भाव से उच्चारित शब्दो से किया करते थे। आचार्य जिनसेन की धारणा मे अत्यन्त कठोर अक्षरो का प्रयोग मानसिक अधीरता तथा विचारहीनता का प्रमाण है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से कटु और कठोर अक्षरो के अधिक प्रयोग से उच्चारण स्पष्टता तथा वक्ता की शारीरिक और मानसिक कोमलता धीरे २ समाप्त हो जाती है। मत्र शास्त्र के अनुसार कठोर अक्षर के बार बार उच्चारण से वाणी कर्कश एव अप्रिय बन जाती है, इसीलिए कठोर अक्षरो का नाद व्रर्जित किया गया है। आयुर्वेद मे पित्त प्रकोप के अनेक कारणो में रूक्ष-भाषा प्रयोग को प्रमुख कारण माना है।

एक बार की बात है। आचार्य जिनसेन महापुराण की रचना कर रहे थे। उन्हे एक दिन अपनी रचना के प्रथम श्लोक मे प्रयुक्त किसी शब्द विशेष से यह अनुमान हुआ कि अब मेरा आयुष्य बहुत थोडा है मै इस स्वल्प समय मे इस महान ग्रथ को पूर्ण नही कर पाऊगा। दूसरे दिन उन्होने अपनी मेधावी शिष्य मण्डली को आमन्त्रित किया। उनके पाडित्य की जाच के लिए आचार्य ने एक शिष्य से कहा "सूखा ठूठ सामने खडा है" इसका सस्कृत मे अनुवाद करो। शिष्य ने तत्काल सुनाया "शुष्को वृक्ष तिष्ठत्यग्रे।" आचार्य ने दूसरे शिष्य से कहा, उसने उसी भाव को कोमल शब्दावलि मे अभिव्यक्त किया, "नीरस तरुरिह विलसति पुरत " इस परीक्षा के बाद आचार्य ने गुरुतर उत्तरदायित्व का भार उसे सौप दिया क्योंकि दूसरे शिष्य का हृदय कोमल था।

मन को बाहर से खीचकर भीतर की ओर ले आने के शास्त्रों मे अनके उपाय बताए गये है, उन सबमे जप-साधना सरल एव सुबोध साधन है। जप से मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष्ठक खुलते है। तत्त्वत इन स्तरों का खुलना ही चेतना का विकास-विस्तार है। मस्तिष्क की सक्रिय सजगता से बुद्धि निर्मल होकर इन्द्रियो को आत्म-परिधि मे खीचकर ले आती है, इसलिए मत्र-जाप को चेतना-स्तरो के विकास का एकमात्र साधन मान लिया गया है।

जप एक प्रकार की आध्यात्मिक क्रिया है। जिसका अर्थ है - मत्र ध्वनि के सहारे चेतना को घुमाना, दोनो का साथ २ पुनरावर्तन करना। इस पुनरावर्तन के मुख्य उद्देश्य है, चेतना की गहराई मे उतरकर मनोग्रथियो को आहत करना, उपचेतन मन मे छुपी शक्तियो से परिचित होना तथा मत्र-ध्वनि-प्रकम्पनो के द्वारा मत्रो के नायक-अधिदेवताओ को आह्वान करना।

मत्रो के बारम्बार आवर्तन से मत्र और चेतना दोनो के बीच घर्षण-क्रिया उत्पन्न होती है, जिससे मत्राक्षरो की धार तीक्ष्ण होती है और चेतना के चारो ओर वायु के सूक्ष्म भाग - ईथर मे कपन पैदा होने लगते है।

जैन दर्शन के अनुसार ''ध्वनि का जन्म तब होता है, जब बाह्य-वायु से भीतर की वायु टकराती है। इस टकराहट से उत्पन्न कपनो के द्वारा शब्दो का जन्म होता है। यह तथ्य विज्ञान सम्मत भी है। जो स्वर और व्यजन मानवी-इच्छा के अनुसार भीतरी प्रकपन से उत्पन्न होते है, वे बाहर आकर ईथर

के पूर्व कपनो के साथ मिल जाते है। अब तक की खोज के अनुसार ईथर मे एक सेकिण्ड मे २३०५७-६३००९२१ ३६९३ ६५२ तक कपन पैदा होते है, यद्यपि मनुष्य के कान बत्तीस हजार सात सौ सत्तर कपन से अधिक नहीं सुन सकते। इसके बाद ये कपन X Rays मे परिवर्तित हो जाते है। टेलिविजन, रेडियो तथा वायरलेस का विकास इसी सिद्धान्त पर हुआ है।"

ध्वनि-मात्र, मत्र-शक्ति का कारण नही है। मत्र तब बनता है जब उसके साथ जागृत मन का योग होता है। फलत लम्बी मानसिक जप-साधना के बाद वह मत्र, शक्ति के रूप मे जपकर्ता की प्राणधारा के साथ बहने लगता है। यही प्राणस्पर्शी-जप, टेलिपेथी, रोग-निवारण, अनाहत-नाद तथा अतीन्द्रिय अनुभूतियो का कारण है।

ध्वनि का स्वतत्र प्रभाव होता है। मद, तेज, मृदु और कठोर सबका अपना हिसाब है। मत्र ध्वनि ही एक ऐसा साधन है, जो जगत से बधे मन को काटकर बधन-मुक्त कर सकती है। वैज्ञानिक परीक्षणो के अनुसार सूक्ष्मध्वनि तीव्र छेदन करती है।



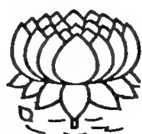
मंत्राक्षरों का शरीर व मन पर प्रभाव

अब तक के हुए वैज्ञानिक परीक्षणो से हम यह भली-भाति जान चुके है कि शब्द और चेतना के घर्षण से नई विद्युत् तरगे उत्पन्न होती है। मत्र विज्ञान इसी घार्षणिक विद्युत्-ऊर्जा पर आधारित है। प्रत्येक मत्र अपने लयबद्ध परावर्तन के समय जपकर्ता के चारो ओर तथा उसके लक्ष्य बिन्दु तक प्रकम्पनो का जाल-सा बिछा देता है। यह प्रकम्पनो की सघनता ही भाति-भाति के चमत्कार तथा गुप्त शक्तियो के भेदन का कारण बनती है। सामान्यत अनुकूल ध्वनि-तरगो के परिणामस्वरूप शरीर स्वस्थ, इन्द्रिया सक्रिय, मल सुस्थिर और शान्त होने लगता है। इसके साथ प्रतिकूल ध्वनि प्रकम्पनो का मानव-शरीर, मानव-स्वभाव तथा चेतना की आन्तरिक अवस्थाओ पर घातक प्रभाव होता है। इसी सदोष प्रभाव के कारण कुछ मत्र मारक, उच्चाटक बन जाते हैं। जहाँ ध्वनि की कर्कशता और तीव्रता हमारे व्यक्तित्व को असतुलित करती है, पूरे शरीर, मन और भावना - जगत् मे हलचल पैदा कर देती है, वहा मधुर ध्वनि क्षण-भर मे हमारे शरीर को नीरोगता एव मन को पुलकन से भर देती है। शब्दो की प्रियता और अप्रियता के उदाहरण हम आए दिन अनुभव करते हैं।

एक बहन पडोसिन के रेडियो को सुनते-सुनते विक्षिप्त हो गई। आखिर उसे लकवा मार गया। डॉ फास्टर कैनेडी का कहना है -- तेज ध्वनि नाडियो, शिराओ और पेशियो पर अपना कुप्रभाव छोडती है। फलत अपच, सिरदर्द, ज्वर और पागलपन जैसी अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है।

एक बार की बात है, दो विद्यार्थियो मे हाथापाई हो गई। बात बुरी तरह से तन गई। दोनो लडते-लडते प्रिसिपल के कमरे मे पहुचे। वे अपनी बात प्रारम्भ करे, उससे पहले प्रिसिपल महोदय ने ग्रामोफोन शुरू कर दिया। एक रिकार्ड समाप्त हुआ, दूसरे और तीसरे के बीच दोनो से पूछा क्या बात है? तब तक लडाई समाप्त हो चुकी थी। सगीत के स्वरो के साथ बच्चे बह गए, मन कोमल भावो से भरा, तनाव निकल गया, दोनो शान्त होकर चले गए।

एक बार बादशाह अकबर की पुत्री को बुखार हो गया। उपचार किए, कोई लाभ न हुआ। अन्त मे सगीत शिरोमणि कवि तानसेन को बुलाया। दीपक राग के आलाप द्वारा राजकन्या को ज्वर मुक्त किया। फलत वह बुखार तानसेन मे सक्रात हो गया। उसी समय तानसेन के एक साथी ने मेघ-मल्हार सगीत का सुमधुर शीत आलाप किया। ज्वर शान्त हो गया। हमने जाना, एक शब्द रोग का शमन करता है और एक शब्द रोग का आह्वान। एक शब्द मन के टुकडे कर देता है और एक शब्द गिरते मन को थाम लेता है। अक्सर लोग कहते है कार्यक्रम इतना प्रभावक था, सब मत्रमुग्ध हो गए। यह मत्रमुग्धता क्या है? मात्र ध्वनि-प्रकम्पनो का ही प्रभाव है। अमेरिका मे एक ऐसी मशीन बनाई गई है जो ध्वनि-तरगो को एकत्र करती है। उन सगृहीत ध्वनि-तरगो से हर कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।



मंत्र साधना :- क्यों, कैसे ?

मत्र मत्राक्षरो की प्रभावक रचना विशेष का नाम है। इससे स्पष्ट और लयबद्ध उच्चारण मे जपकर्ता के चारो ओर कुछ विशिष्ट प्रकार की ध्वनि-तरगे उत्पन्न होने लगती है। किसी भी तरग का उत्पन्न होना यह प्रमाणित करता है कि आकाशीय प्रकम्पनो मे कुछ तीव्रता आई है। सम्भव है इसी आधार पर कुछ दार्शनिको ने शब्द को आकाश का गुण (स्वभाव) बताया है।

शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण से मनोग्रन्थियो पर अनुकूल प्रभाव पडता है अर्थात् चेतन मन के स्तर खुलने लगते है। हमारे बाहर जो ध्वनि-तरगे, आकृतिया उभरती है, वे मन के सन्तुलन, रोग-निवारण तथा शक्ति के आह्वान मे बहुत अच्छा कार्य करती है। ये ही सब कार्य अशुद्ध उच्चारण से विपरीत होते हुए देखे गए है। कुछ मत्र इसी कमी के कारण 'प्राणलेवा' बन जाते है । विक्षिप्त होना, साधना से विमुख हो जाना, नए रोगो का उत्पन्न होना तथा किसी आकृति का प्रेत रूप मे अनुभव करना, ये सब इसी उच्चारण अशुद्धता व अस्पष्टता के परिणाम है। मत्राचार्यों तथा तान्त्रिको ने इस बात पर बडा बल दिया है, सोच्चारण जप करते समय लय, ध्वनि-शुद्धता, स्पष्टता तथा निरतरता का विशेष ख्याल रखा जाए।

णमो अरिहताण मे हम वीतरागता की वदना करते है। फिर क्रमश अनन्तता, समाधि-सम्पन्नता, ज्ञान-सम्पन्नता तथा साधुता की वदना करते है। जैन दर्शन व्यक्ति-पूजा का दर्शन नही, बल्कि गुण-पूजा का दर्शन है। वदना करते समय हमारा ध्यान किसी मूर्ति, अरिहन्त - देह तथा अरिहन्त - पद पर नही होकर 'अरहतत्व' पर होना चाहिए।

मत्र-जप क्यो ?

मत्र विविध शक्तियो का खजाना है। मनोयोगपूर्वक जाप करने से वे सारी शक्तिया जपकर्ता मे धीरे-धीरे प्रकट होने लगती है। मत्र-जप के मुख्य लाभ ये हैं--

१ दुर्बल मन को सबल बनाना
२ रोगी मन को स्वस्थ करना
३ तेजस शरीर को सक्रिय करना
४ आभामण्डल का शोधन करना
५ चित्त की अन्तर्मुखता को बढाना
६ विराट शक्तियो का नियोजन
७ दुष्ट शक्तियो का निग्रह करना
८ विचारो तथा भावनाओ का यथास्थान सम्प्रेषण करना
९ कर्म-सस्कारो, बधनो का विलय करना

माला से जप क्यों ?

हर मजिल के बीच कई स्टेशन होते है, जिन्हे कुछ लोग यान वाहन से पार करते है, कुछ विमान से और कुछ अपने चलते-रुकते चरणो से। मन की मजिल तय करने का भी यही क्रम है। कई श्वास के रथ पर बैठकर अपनी यात्रा तय करते है और कई अपरिचित यात्रा मे अपने चिर-परिचित मित्र-मन के द्वारा ही मन की सुविधा खोज लेते है।

माला मन का एक लघु पडाव है। मनको की पटरी पर मन की यात्रा है। धीरे-धीरे इन जड मनको के सहारे चेतना एक दिशा मे बहना सीख लेती है। सामान्यतया हमे इस बात का

अनुभव नही होता है, मन कब चचल होता है और कब स्थिर, किन्तु जब हम माला के मणि जैसे किसी एक बिन्दु पर उसे रोकने की कोशिश करते है तब यह स्प्ष्ट हो जाता है, मन यो भागता है तथा यो ठहरता है।

माला मन की स्थिरता का एक सुदृढ आलम्बन है। आन्तरिक सचेतनता का प्राथमिक अभ्यास है। हमारा मन दिन-भर अपनी गति से चलता है, किन्तु मन के सगीत का लय कब टूटता है तथा कब जुडता है, यह चालू जीवन क्रम मे मालूम नही होता। जब हम किसी मत्र का जप करने तथा उपासना विशेष मे बैठते है तब यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है, मन का तार यो टूटता है और यो फिर से जुडता है। यदि वापस जुडने मे देर होती है, तो गति रुक जाती है या अचेतन अवस्था मे मनको का मात्र आवर्तन होता रहता है, चेतना का जागरण नही होता।

माला कैसे ?

जपयोग की साधना मे जिन्हे आस्था है, वे जैसे-तैसे जप करने की मनोवृत्ति का पोषण न करे। प्रत्येक मणिया हमारे मन का दर्पण है।

माला का मतलब है -- मनको का समूह और उन मनको के सहारे मत्र विशेष का पुनरावर्तन करना। अविधि से किया गया जप स्वय जपकर्ता के मन मे एक-न-एक दिन अनास्था उत्पन्न करता है अत आवश्यक है जप-अनुष्ठान के पूर्व निम्नोक्त बातो पर गौर किया जाए

१ माला दाहिने (Right) हाथ से हृदय के पास रखते हुए धीरे-धीरे जप किया जाए।

२ एकान्त स्थान का ध्यान रखा जाए। यदि कही पाच-पचीस व्यक्ति एक साथ बैठकर एक ही मत्र को एक लयपूर्वक जपते हो, तो उनके साथ बैठा जा सकता है।

३ मत्र को सामान्यतया बदलना नही चाहिए।

४ मत्र जप मे निरन्तरता होनी चाहिए, क्योंकि लम्बा जप ही शरीर और चेतना के बीच एक नई हलचल पैदा करता है।

५ श्वास हमारे मन का दर्पण है। माला प्रारम्भ करते समय यह देखना चाहिए कि कौन-से नथुने से सास आ रही है। यदि दोनो नासारध्र खुले है तो बहुत ही उपयोगी है, किन्तु यदि बाया स्वर चल रहा है तो भी तुरन्त माला शुरू कर देनी चाहिए क्योंकि योग दर्शन के अनुसार ईडा (बाया स्वर) का मतलब है - मन और पिगला (दाया स्वर) का मतलब है - प्राण। जब सूर्य स्वर (दाहिना स्वर) चलता है तब क्रियाशीलता विशेष होती है और जब चन्द्र स्वर चलता है तब स्थिरता और शान्ति की भावना सहज उभरती है, अत मत्र जप करते समय 'मनोवहा' नाडी का योग होना लाभकारक बताया गया है।

मैने स्वय कई बार इस बात का अनुभव किया है, कभी-कभी अचानक मन चालु प्रवृत्ति से विमुख होकर किसी एक विन्दु पर रुकना चाहता है और उसकी माग के अनुसार रुक जाने पर यह ज्ञात हुआ कि प्रकृति के सकेत को समझकर कितना वडा लाभ उठाया जा सकता है और बिना किसी विशेष प्रयत्न के हम एकलय और एकरस हो सकते है। साधना के लिए प्रशस्त भूमिका निर्मित कर सकते है।

६ प्रारम्भिक अभ्यास के दिनो मे माला अवश्य रखी जानी चाहिए। इससे मानसिक प्रतिबद्धता रहती है। जैन और बौद्ध दोनो परम्पराओ मे यह उल्लेख मिलता है, माला को यत्र-तत्र नही रखना चाहिए। एक-दूसरे के बीच माला का आदान-प्रदान न हो। जिस माला से जाप करते है उसे गले मे न पहने।

७ मन्त्र-जप बिना किसी कामना के होना चाहिए।

८ माला फेरते समय सजग रहे, अन्यथा अन्तर्मुखता के बहाने आप शून्य होते चले जाएँगे। सम्भव है एक दिन निष्क्रिय-अचेतन मनोभूमि पर ही खडे रह जाए। इसलिए लम्बे जप अनुष्ठान के समय बीच-बीच मे श्वास-दर्शन करते रहे।

९ जप नियमित और निर्धारित सख्या मे होना चाहिए। बीच-बीच मे टूटने वाला जप यह प्रमाणित करता है कि जपकर्ता का मन पर कोई नियत्रण नही है।

१०८ सख्या का निर्धारण क्यो ?

सामान्यतया सब दर्शनो मे १०८ मनको की परम्परा प्राप्त होती है। तत्र-साहित्य मे कही-कही न्यून व अधिक मणियो की माला का विधान भी प्राप्त होता है, किन्तु वह किसी विशेष लक्ष्य की सम्पूर्ति के लिए है। जैन परम्परा के अनुसार १०८ की सख्या पच परमेष्ठी की आन्तरिक गरिमाओ के कारण है अर्थात् अरिहन्त सिद्ध आदि पाचो दिव्य आत्माओ के अलग-अलग गुण-विशेषताएँ है।

१ अरहन्त -- बारह गुणो के धारक

२ सिद्ध -- आठ गुणो के धारक

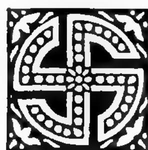
३ आचार्य -- छत्तीस गुणो के धारक

४ उपाध्याय -- पच्चीस गुणो के धारक

५ साधु -- सत्ताईस गुणो के धारक

कुछ योगाचार्यों का अभिमत है कि हमारी चेतना के १०८ स्तर है, उन सभी चेतना-स्तरो के जागरण का सकेत इन मनको के साथ जुडा है। प्रत्येक मणि के घुमाव के साथ एक चेतना-बिन्दु की यात्रा तय हो जाये, यह भावना की गई है। कई योगाचार्यो ने लिखा है, मणि के परावर्तन से मन पर जमी सभी मैली परते धुलती है। इससे चेतना के आरोहण का क्रम तेज-निर्बोध हो जाता है। तान्त्रिक लोगो का कहना है, मा काली के गले मे १०८ खोपडियो की माला है, अत उसकी स्मृति के लिए यह एक परिकल्पना की गई है।

इस प्रकार करीब-करीब सभी धर्म-सम्प्रदायो मे १०८ जप की परम्परा रही है। मत्र साधना का यह विषय बहुत गहन है। अत अपेक्षा है हम अपना अनुभव इस दिशा मे और बढाते रहे।



शास्त्रोक्त मन्त्रो के प्रकार

मत्र साहित्य मे मुख्यत मत्रो के ९ प्रकार प्राप्त होते हैं। उनमे केवल दो प्रकार के मत्र ऐसे होते है, जो आत्म-शान्ति और आत्म-सिद्धि मे सहायता करते है।

१ स्तम्भन मत्र-जिन मत्र-ध्वनि प्रकम्पनो से भूत-प्रेत जनित उपसर्ग और हिसक जीव-जन्तुओ के आक्रमण को रोका जाता है।

२ मोहन मत्र - जिन मत्र-ध्वनि-प्रकम्पनो के द्वारा किसी व्यक्ति को सम्मोहित (अपने अधीन) किया जाता है।

३ उच्चाटन मत्र -- जिन मत्राक्षरो के तीव्र घर्षण से किसी को अशात, पदच्युत और भॉति-भाँति की शारीरिक यातनाएँ पहुँचायी जाती हैं।

४ वशीकरण मत्र -- जिन मत्र-ध्वनि-प्रकम्पनो के द्वारा किसी को अपने वश मे किया जाता है और अपने निकट बुलाकर स्वेच्छा से अपना कार्य सम्पन्न कराया जाता है।

५ जृम्भण मत्र -- जिन मत्र-ध्वनि प्रकम्पनो के द्वारा भूत-प्रेत जैसी आसुरी शक्तियाँ भयभीत हो उठती है।

६ विद्वेषण मत्र - जिन मत्र-ध्वनि-प्रकम्पनो के द्वारा परिवार, जाति, प्रान्त तथा राष्ट्रीय चेतना मे विक्षोभ उत्पन्न कर दिया जाता है।

७ मारण मत्र - जिन मत्र-ध्वनियो के सघर्षण द्वारा दूरस्थ शत्रु को प्राणदण्ड रुप यातनाएँ दी जाती है।

८ शाति मत्र - जिन मत्र-ध्वनियो के द्वारा शारीरिक, मानसिक और दैविक बाधाओ का निवारण तथा अन्य आगन्तुक कष्टो को उपशान्त किया जाता है।

९ पौष्टिक मत्र -- जिन मत्र-ध्वनियो के द्वारा आत्म शान्ति, विद्या, लक्ष्मी एव सन्तान जैसी भौतिक अभिसिद्धियॉ प्राप्त होती है।

मत्र साधक का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट और पवित्र होना चाहिए। यदि साधक का दृष्टिकोण आत्मलक्षी नही है, तो वह मत्र-साधक को सब कुछ देकर भी आत्म-शान्ति का वरदान नही दे सकता। जो साधक स्वार्थ सिद्धि, परोपघात तथा वशीकरण, मारण, उच्चाटन जैसी किसी दूषित भावना से प्रेरित होकर यदि मत्रो का प्रयोग करता है, वह अपना पतन और जैन शासन की महिमा का ह्रास करता है।

मत्रो के अन्य प्रकार -

१ स्त्रीमत्र, पुरुषमत्र, नपुसकमत्र।

२ सिद्धमत्र, साध्यमत्र, सुसिद्ध मत्र, अरिमत्र।

३ पिडमत्र, कर्तरीमत्र, बीजमत्र, मालामत्र।

४ मारकमत्र, उच्चाटकमत्र।

५ सात्त्विक, राजस, तामसमत्र।

जिन मत्रो का देवता पुरुष होता है, वह पुमत्र कहलाता है। जिन मत्रो का देवता स्त्री होता है, उन मत्रो को विद्या कहते है। दूसरी परिभाषा के अनुसार जिन मत्रो के अन्त मे ' हु '

और ' हू ' जैसा होता है, उसे पुमत्र कहते है और ' उ ' से जिस मत्र की समाप्ति होती है, उसे स्त्रीमत्र। इससे भिन्न ' नम ' से सम्पन्न होने वाले मत्रो को नपुसक कहा गया हे। इसी प्रकार जिन मत्रो मे केवल एक ही अक्षर होता है, उन्हे पिण्ड, दो अक्षर वाले कर्तरी, तीन वर्ण से लेकर नौ वर्ण तक के बीजमंत्र कहलाते है और इससे अधिक वर्ण वाले मालामत्र, सिद्धमत्र, वधुमत्र कहलाते हैं।

फल-निष्पत्ति

१ सिद्ध मत्र -- यह मत्र कुछ समय तक मत्र साधक को लाभान्वित करता हे, फिर धीरे-धीरे इसका प्रभाव क्षीण होता चला जाता है।

२ साध्य मत्र -- यह मत्र बहुत दिनो के वाद अपना फल प्रकट करता है।

३ सुसिद्ध मत्र -- यह बहुत शीघ्र अपना फल लाता है।

४ शत्रु मत्र -- यह साधक के अर्थ और प्राण दोनो को हानि पहुँचाता है।



महामन्त्र में प्रयुक्त बीजाक्षर

नमस्कार महामत्र सब विद्या - मत्रो मे प्रधान मत्र है। इस मत्र की प्रधानता और महत्ता का सगान जैन-शासन के सभी प्रभावक-आचार्यों ने विशेष श्रद्धा से किया है। विद्या-प्रवाद पूर्व, जो मत्रो का अक्षय भण्डार है, उसका शुभारभ भी इसी चिन्तामणि महामत्र से हुआ है। तत्त्वत सभी मत्र-ध्वनियो का मूल आधार यही महामत्र है। मत्र-साहित्य के अनुसार इस मत्र मे वे सभी मातृकाए (वर्णमालाक्षर) तथा शक्ति-बीज प्रयुक्त हुए है, जो अन्य मत्रो मे फुटकल रूप मे पाए जाते है। शक्ति का अर्थ है स्वर और बीज का अर्थ है -- व्यजन। इन दोनो की उचित सयोजना से बीजाक्षरो का जन्म होता है। शब्द शास्त्र के अनुसार कोई भी ऐसा अक्षर नही है, जो मत्र-शक्ति से रहित हो, किन्तु उनमे मत्र-रुपता अक्षर-सयोजना से प्रगट होती है।

अमत्र अक्षर नास्ति, नास्ति मूल मनौषधम्।
अयोग्य पुरुष नास्ति, योजक स्तत्र दुर्लभ ॥

- परीक्षण के अनुसार वह मत्र विशेष प्रभावक होता है, जिसमे म्, स, ह, र और अ, इ, आदि का विशेष योग होता है। नमस्कार मत्र मे ये सभी अक्षर - ध्वनिया बारम्बार प्रयुक्त हुई है।

शक्ति, शक्ति को आकर्षित करती है, इस कहावत के अनुसार महामत्र के निरन्तर जप से अनेक अदृश्य-शक्तियाँ जाग उठती है। जो ध्वनि - प्रकम्पन धरती की सतह पर स्थिर हो गये है, वे सब फिर सक्रिय हो जाते है। क्योंकि इस मत्र मे प्रयुक्त

प्राय सभी अक्षर कम्पन-बहुल और आकृति-प्रधान है। जहा आकृतिया विशेष निर्मित होती है, वहा विशिष्ट मत्र-नायक-शक्तियो का आकर्षित होना स्वाभाविक है।

अ - आत्मा के एकत्व का सूचक, शक्तिवर्धक।

आ - शक्ति, बुद्धि, कीर्ति-वर्धक, धन और आशापूरक।

इ - लक्ष्मी-प्रापक, कार्य साधक, वह्नि बीज।

उ - अद्भुत शक्तिमय, वशीकरण, श्वास नली से जोर देने पर मारक।

ऊ - उच्चाटक, कार्यध्वश के लिए समर्थ, शक्तिवर्धक।

ए - अनिष्ट निवारक, मत्रो का जनक, पोषक, गति-सूचक।

ओ - निर्जरा हेतु (उच्चस्वरावस्था मे) रमणीय पदार्थो की प्राप्ति मे सहायक बीजो मे प्रधान, श्री का हेतु।

अ - ध्यान-मत्रो मे प्रमुख, शून्य सूचक, लक्ष्मी बीज का मूल।

ड - मातृकानुसार फलदायक, शत्रु का विध्वसक।

ज - नूतन कार्य साधक, शत्रु का विध्वसक।

ज - नूतन कार्य साधक, आधिव्याधि शामक, आकर्षण-बीज।

झ - रेफयुक्त होने पर कार्य साधक, रोग नायक, श्री बीज का जनक।

ण - शान्ति सूचक, शक्ति स्फोटक, ध्वंश बीजो का जनक

त - आकर्षक बीज, कार्यसाधक, सारस्वत बीज के साथ सिद्धि दायक। ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार एकाक्षर

प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टि से इस महामन्त्र मे सभी वर्ग और सभी वर्गों के वर्ण हैं।

द - कर्मनाश मे प्रधान, वशीकरण बीज, आत्म शक्ति का उद्घाटक।

ध - मातृकानुसार फलदाता, श्री क्ली बीजो का आधार।

न - अत्मसिद्धि का सूचक, जलतत्त्वस्त्रष्टा, हितैषी।

म - भौतिक, अभौतिक सिद्धिदाता, सन्तान-प्राप्ति मे सहायक

य - शान्तिदाता, महत्त्वपूर्ण कार्यसिद्धि का हेतु, ध्यान - साधक, प्रिय वस्तु प्राप्ति का साधक।

र - अग्नि-बीज, समस्त प्रधान बीजो का जनक, कार्यसाधक ।

ल - लक्ष्मी प्राप्ति मे समर्थ, श्री बीज का सहयोगी, कल्याण हेतु

व - सिद्धिदाता, ह र के योग से चमत्कार कर्ता, बुद्धि-बीज, भूत पिशाच-बाधक, रोग हर्ता, कष्ट स्तम्भक।

स - सर्व इच्छा फल दाता, सब बीजों मे प्रायोग्य, पौष्टिक कार्य मे उपयोगी, विनाशक, आत्म दर्शक -- शान्ति, पुष्टि व मगल-कार्य का उत्पादक, आत्मसाधना मे परमोपयोगी, अनुस्वार सहित सन्तान प्राप्ति मे हेतु, सब बीजो का जनक, लक्ष्मी की उत्पत्ति मे सहायक ।

उपरोक्त २३ मातृका ध्वनिया नमस्कार महामत्र मे प्रयुक्त हुई है। आज अपेक्षा हो गई है, मानव जीवन मे व्याप्त दुख व दर्द का समाधान मत्रशक्ति के द्वारा किया जाए।

अन्य विशिष्ट बीजमत्र

कुछ वीजमत्र विशेष होते है। जिनके समुचित योग से यह नमस्कार महामन्त्र आत्मसिद्धि कारक होने के अतिरिक्त लक्ष्मी-प्रापक रोग-विनाशक, देव शक्तियो का आकर्षक, भूत-प्रेत बाधा निवारक, सुखशान्ति कारक और विविधकामना पूर्ति का कारण बनता है।

बीज मत्रो की उपयोगिता सविधि शुद्ध जाप से बहुत जल्दी प्रकट होती है, किन्तु केवल बीजमत्रो का जाप इसमे सहायक नही होता। बीजमत्र, किसी अन्य मत्र के साथ जुड कर अपना प्रभाव दिखाते है।

ओ - प्रणव वाचक, ब्रह्म बीज।

ह्री - कल्याण-वाचक

ह - मगल वाचक, गणनाबीज

क्ली - लक्ष्मी प्राप्ति वाचक

ह्रौ - महा-शक्ति, सिद्धि - बीज

स्वधा - पुष्टि वाचक

ह्र - ज्ञान बीज

श्री - कीर्ति-वाचक

क्ष्वी - शान्ति वाचक

हु - विद्वेष वाचक

क्ष्वी - योग वाचक

स्वाहा - शान्ति वाचक

नम - शोधन बीज

त थ द - कालुष्य नाशक-सुखकर।

उपरोक्त सभी बीजाक्षर कभी दो और कभी तीन एक साथ जुड कर अपना प्रभाव दिखाते है और कभी अपनी स्वतत्र सत्ता मे रहकर। कुछ प्राचीन जैन आचार्यो ने नमस्कार महामत्र के साथ बीज मंत्रो का योग करके उसकी प्रभावक क्षमता को अधिक वृद्धिगत करने की दिशा मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उसके कुछ उदाहरण हम पुस्तक के अन्त मे पाएगे।



धर्म के सात फल

- *रोग रहित तन।*
- *तनाव रहित मन।*
- *उन्माद रहित धन।*
- *क्रूरता रहित वचन।*
- *वासना रहित विचार।*
- *दोष रहित आचार।*
- *हिसा रहित सस्कार।*

क्या मंत्र भी अनिष्ट करते हैं?

प्रत्येक शब्द मे अपना स्वतत्र प्रभाव होता है। हम जिन शव्दो का उच्चारण करते है वे शब्द हमारे चारो और भाति भाति के कपन उत्पन्न करते है। उन ध्वनि कपनो से शरीर के स्नायु, रक्त तथा हमारा मानस-जगत प्रभावित होता है और जो प्रत्येक शब्द के अधिनायक देवता है, वे सजग हो उठते है।

मत्रसाहित्य में सुअक्षर सयोजन पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि विपरीत अक्षर-सयोजन से निर्मित होनेवाला मत्र जपकर्ता के स्वास्थ्य का उपघात करके वायु मण्डल से आसुरी शक्तियो का आह्वान करता है।

वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर स्वय मे न शुभ होता है और न अशुभ। उनमे शुभ और अशुभरुपता विरोधी और अविरोधी वर्णाक्षरो के योग से आती है। मत्रो से उपघात (शाप) की जो वात हम सुनते है, उसके पीछे भी वही शक्ति काम करती है, जो मत्र सिद्धि मे सहायक होती है। यही वर्ण-सयोजनक्रम बीजाक्षर और दग्धाक्षर की कल्पना का आधार है। यद्यपि वीजाक्षर और दग्धाक्षर मे सामान्य उच्चारित शब्द से अधिक क्षमता होती है, किन्तु एक मे घातक शक्ति होती है और दूसरे मे विशिष्ट उपकारक-शक्ति। उपकारक शक्ति का वीज-मत्रो (शक्तिवीज) से आह्वान होता है, दग्धाक्षरो के दुष्प्रभाव के वारे मे यहा तक कहा गया है कि कविता आदि मे अमुक प्रकार के वर्णों का योग होने पर उस लेखक का वहुत जल्दी अनिष्ट हो जाता है।दग्धाक्षरो से तात्पर्य है, ऐसे वर्ण-सयोग, जिनके उच्चारण से कर्कश ध्वनि-तरगे उत्पन्न होती है, मानसिक कोमलता भग

होती है। कहा जाता है, दग्धाक्षरो का योग फलादेश मे अपरिहार्य होता है। इससे मारक-योग तक बन सकता है।

एक जैनाचार्य साहित्य रचना कर रहे थे। एकाएक दग्धाक्षर का योग बना। लेखनी रुक गयी। उन्होने आयु-क्षय की निकटता को जानकर पीछे की व्यवस्थाए की। समाधि पूर्वक देह त्याग किया।

प्राचीन युग मे इस भय के कारण अनेक लोग कविता नही करते थे। उभरते हुए अपने कवित्व कौशल को रोके रहते थे क्या पता कब दग्धाक्षर का योग पड जाए?

प्रत्येक स्वर और अक्षर के स्वतत्र अधिदेवता होते है। वे ध्वनि-कपन के साथ जुडी-आकृतियो से आकर्षित होकर उन शब्द समूहो मे निवास करते है। यदि किसी मत्र के अक्षर, जपकर्ता की सकल्प भावना के प्रतिकूल है तथा बीजाक्षरो का शरीरिक दृष्टि से अनुकूल योग नही बनकर प्रतिकूल योग बन गया है, तो अनिष्ट का होना स्वाभाविक है। बीजाक्षर वे होते है, जिनमे कई नायक देवताओ का अधिवास होता है। यदि उन नायक देवताओ मे किसी मत्र के तेज मन्द उच्चारण के कारण सघर्ष हो जाता है, तो विपरीत फल सिद्धि का योग बन जाता है।

कुछ जप - साधना करने वाले लोग ऐसे भी होते है, जो पर्याप्त मानसिक पवित्रता तथा सकल्प दृढता के अभाव मे साधना करते है। वे उस शक्ति को सहन नही कर सकने के कारण भयकर कोप के भाजन बन जाते है। वह कुपित शक्ति कभी-कभी उस साधक मे प्रविष्ट होकर उसका तथा उसके

आत्मविश्वास का विनाश कर देती है।

आयुर्वेद और ज्योतिष विद्या के अनुसार प्रत्येक प्रणवाक्षर (मन्त्राक्षर) और बीजाक्षर की सिद्धि ग्रह - नक्षत्रो के अधीन होती है अर्थात् जिस बीजाक्षर का जिस नक्षत्र के साथ सम्बन्ध है, यदि उस योग के अनुसार जाप किया जाता है, तो वह मत्र अविलम्ब कामना पूर्ति का माध्यम बनता है। इसके विपरीत योग बनने पर वह मत्र उसे अभिशप्त करता है।

हाल मे हुई शोध के अनुसार ब्रह्माडव्यापी ग्रह-नक्षत्र भी परा - मानसिक तत्त्व को प्रभावित करते है।

जापान के एक वैज्ञानिक की खोज ने यह सुस्पष्टकर दिया है कि सूर्य के धब्बो तथा सूर्य पर लगने वाली आग के ग्यारहवर्षीय चक्र से मनुष्य की रक्त क्रिया मे ही नही, किन्तु रक्त की सरचना मे आमूल परिवर्तन आ जाता है।

यही सम्भावना प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक प्रो फ्रेंक ब्राउन ने प्रगट की है कि हमारी सृष्टि के असख्य जीव ब्रह्माण्ड के सम्वेदन और स्पदन को ग्रहण करने के लिए रिसिवर का कार्य करते है। यह जागृत चेतना वाले लोगो की बात है। इस चुम्बकीय विद्युत् सम्पर्क के बीच जो चेतना दुर्बल है -- अप्रकाशित रहने वाली है, वह दुष्ट ग्रह से विशेष प्रभावित होती है।

मत्र - साधना मे तिथि, वार, नक्षत्र तथा ग्रहो का जो विधान प्राप्त होता है, लगता है कि उसका एक मात्र यही उद्देश्य है, फल सिद्धि मे चैतसिक तथा शारीरिक विक्षेप बाधक न बने। आगन्तुक बाधा-विघ्नो को नक्षत्रीय -शक्ति कन्ट्रोल कर सके।

सामान्यतया प्रश्न-ज्योतिष विद्या के तीन आधार माने गये है -- प्रश्न-लग्न, स्वर-विज्ञान और प्रश्न कर्ता के मुख से उच्चारित प्रश्नाक्षर। इन तीनो विधियो मे प्रश्नाक्षरो के आधार पर उत्तर दी जाने वाली पद्धति अधिक मनोवैज्ञानिक है, क्योंकि मानव के मुख से उच्चारित प्रत्येक शब्द के साथ वक्ता की मनोगत भावनाए बोलती है। वर्तमान मनोविज्ञान के अनुसार चेतन मन की प्रत्येक क्रिया, अचेतन मन के द्वारा नियत्रित रहती है। अत वह जो बोलता है, और वह जो जानना चाहता है, वह उसके शब्दो मे स्पष्ट लिखा होता है। उत्तर देने वाला केवल यह अनुमान लगाता है कि प्रश्न का आदि अक्षर क्या है ? मध्य और अन्तिम अक्षरो का योग कैसा बना है और उस पूरे वाक्य मे कितने वर्ण शुभ है और कितने अशुभ ?

प्रश्न मुख्यत दो प्रकार के होते है -- वाचिक और मानसिक। वाचिक प्रश्नो का उत्तर प्रश्नाक्षरो की शुभ रूपता और अशुभ रूपता के आधार पर दिया जाता है। उसका एक निश्चित विज्ञान है। पूरी वर्णमाला (मातृका) को निम्नोक्त पाच भागो मे विभाजित किया गया है -- सयुक्त, असयुक्त, अभिहित अनभिहित और अभिघातित।

कुछ प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नो को बताना नही चाहते, उत्तर देनेवाला ज्योतिषी -- फल फूल, नदी और पहाड इन चारो मे कोई एक शब्द सुनकर उनके प्रश्न का उत्तर देता है, या हाथ से कुछ अक्षरो का स्पर्श कराके उत्तर देता है। कहने का आशय इतना ही है कि मनुष्य की अव्यक्त भावनाए शब्दो के साथ जुडी रहती हैं।

मंत्रों से रोग चिकित्सा

शब्द स्वयं में एक शक्ति है, किन्तु उससे अधिक शक्ति उसके पुनरावर्तन में और उससे भी अधिक उसके सूक्ष्म (अशब्द) होने में है। ध्वनि जितनी अधिक सूक्ष्म होती है उतनी ही वह भेदक और आकर्षक होती है। वर्तमान विज्ञान ने ध्वनि तरंगों के द्वारा कुछ अपूर्व कार्य कर दिखाये है।

आज अनेक शोध संस्थान, यंत्रों के द्वारा इस परीक्षण में लगे है कि किस शब्द ध्वनि का, किस अवयव पर कितने समय के बाद क्या असर होता है? वर्तमान में चल रहे चिकित्सा क्षेत्र के कुछ प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अत्यन्त गंभीर एवं असाध्य रोग "मंत्र" के द्वारा मिटाए जा सकते है। बम्बई तथा पूना के तंत्र-विद्या-विशेषज्ञ डाक्टरों ने वहा के रोगियों को एक निर्धारित समय तक मंत्र जाप करवाकर रोगों से मुक्त किया है।

ओकल्ट रिसर्च इन्स्टीटयूट के प्रिंसिपल श्री करमरकर ने शब्दों की शक्ति का विश्लेषण करते हुए अक्षरों में रहे रोग-निवारण सामर्थ्य का उद्घाटन किया है।

कुछ प्रयोग इस प्रकार है -

१ 'र' के एक हजार बार सानुनासिक लम्बे उच्चारण से शरीर में एक डिग्री उष्णता बढ़ती है।

२ स का चन्द्र बिन्दु सहित हजार बार उच्चारण करने से लीवर में ऐसा संघर्ष उत्पन्न होता है जिससे बढ़ा हुआ लीवर कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है।

३ 'ख' के एक हजार बार लम्बे उच्चारण से शरीर मे इतनी उष्णता बढती है कि सर्दी का बुखार भी मिट सकता है।

४ 'ओ' के साथ 'म्' 'ह' के साथ 'री' स के साथ 'री' इन अक्षरो के लगातार हजार बार नाद करने से वात-जन्य हिस्टीरिया जैसी भयकर बीमारिया धीरे २ शान्त होने लगती है।

जप मात्र शाब्दिक पुनरावर्तन नही, किन्तु चित्त वृत्तियो की लयावस्था है। इसी तन्मय भाव दशा मे जप शरीरगत सूक्ष्म शिराओ, कोषो तथा रक्ताणुओ मे विद्युत प्रवाह छोडता है। यही बात वर्तमान वैज्ञानिक अनुसधान कहता है। 'हमारे शरीर के जैसे सूक्ष्म और स्थूल दो भेद है, ठीक उसी प्रकार हमारे भीतर उत्पन्न होने वाली विद्युत् भी दो प्रकार की है। प्रथम जिसे घार्षणिक विद्युत् कहते है, उसका उत्पादन हमारा स्थूल शरीर करता है और धारावाही विद्युत् जिसका उत्पादन हमारा मस्तिष्क यत्र करता है। परामनोवैज्ञानिको के अनुसार मत्र दीक्षा मे दोनो प्रकार की विद्युत् का समवेत प्रयोग होता है। चिकित्सा-क्षेत्र मे हुए अब तक के प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि मत्रोच्चारण के प्रारम्भ मे धारावाही तथा घार्षणिक विद्युत् से उत्पन्न तरगो मे विषमता रहती है। परीक्षण के दौरान पाया गया है कि अन्त में दोनो उर्जाओ की स्थिति समान हो जाती है। इस सन्तुलन के बनते ही चिकित्सा, चमत्कार तथा मानसिक शान्ति के क्षेत्र मे महान उपलब्धिया होने लगती है।

स्थूल शरीर के द्वारा होने वाली सभी प्रवृत्तियों का संचालक और नियामक हमारा सूक्ष्म शरीर है जो पूरे भौतिक शरीर में व्याप्त रहता है। जैन दर्शन के अनुसार सूक्ष्म शरीर के दो प्रकार हैं तैजस शरीर और कर्म शरीर। आधुनिक योग साहित्य में जिसे 'इथरिक बॉडी' और "एस्ट्रल बॉडी" कहा गया है। तैजस शरीर, स्थूल शरीर में व्याप्त विद्युत ऊर्जा का सूचक है और कर्म शरीर (वासना शरीर) एक प्रकार का ईंधन है जो तैजस शरीर के ताप से भौतिक शरीर की मशीन को संचालित करता है।

वैज्ञानिक अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है, 'सूक्ष्म शरीर कुछ ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों से बने होते हैं जिनके इलेक्ट्रोन स्थूल शरीर के इलेक्ट्रोन से अधिक तेज गति वाले होते हैं। कुछ समय के लिए यह शरीर से बाहर होकर जहाँ - तहाँ भ्रमण कर सकता है। इस शरीर की आलोकमयता छाया चित्रों के द्वारा पूर्णतः प्रमाणित हो चुकी है।'

रोग भौतिक शरीर में प्रगट होते हैं किन्तु उसकी सूक्ष्म क्रिया कर्म शरीर और तैजस शरीर में बहुत पहले से प्रारंभ हो चुकी होती है। इन दोनों शरीरों की रुग्णता ही सचमुच मानव शरीर की रुग्णता है।

अमेरिका के मेण्टल हॉस्पिटल के एक प्रवक्ता के अनुसार सभी रोग शारीरिक और मानसिक नहीं होते अधिकांश रोग आध्यात्मिक क्रिया से [कर्म-संस्कार क्रिया] संबंधित होते हैं। इनकी जड़ बहुत गहराई में होती है। जहाँ तक न दवा पहुँचती

महामन्त्र साधना की विधियां -

प्रत्येक मन्त्र की सिद्धि निर्भर करती है उसके विधि विधानों पर। अब तो इस मन्त्र की आराधना और साधना के लिए अनेक विधियो का उल्लेख मिलता है।

- बीजाक्षर के बिना मन्त्र आराधना
- बीजाक्षर के साथ मन्त्र आराधना।
- पाच मूल पदो के साथ आराधना।
- एसो पच चूलिका के साथ आराधना।
- केवल बीज मन्त्र के साथ आराधना (अ सि आ उ सा नम)
- ॐ के साथ पाच पदो की आराधना। ओम् पूर्ण परमेष्ठी का वाचक है।
- कई आचार्यों ने ह्री कार के रूप मे पाचों की आराधना का उल्लेख किया है।
- पाचो पदो का प्रतीक "अर्हं" को मान कर इसकी आराधना का वर्णन मिलता है।
- प्राण विशुद्धि के लिए मै, पै, वै, रै, लै, इन पाच बीज मन्त्रो के साथ भी आराधना का विधान है।

कहते है कि "णमो अरहन्ताण" जप की चौसठ विधिया है। उनमे यह विधि मननीय है।

केन्द्र जप - लाभ

(१) तैजस केन्द्र मे जप - क्रोध विजय
(२) आनन्द केन्द्र मे जप - मान विजय
(३) विशुद्धि केन्द्र मे जप - माया विजय
(४) तालु जप ------- - लोभ विजय

मत्र-शास्त्र मे जप साधना की मुख्य चार प्रणालियो का उल्लेख है, वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। ध्वनि के तारतम्य से मत्र जाप के ये चार स्तर बनते है। क्रमश ये चारो स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम है।

वैखरी स्थूल ध्वनि जिसे साधारणतया हम सबलोग बोलते है।

मध्यमा - पूर्व - ध्वनि से कुछ सूक्ष्म जो मन्द स्वर से बोली जाती है। विज्ञान के अनुसार जिसका माप २० या २५ डेसिबेल तक होता है।

पश्यन्ती -- अत्यत सूक्ष्म ध्वनि, वाणी का मन के साथ योग होने के पश्चात मात्र ध्वनि-प्रकम्पन ही बचते है, उच्चारण जैसा कुछ नही।

परा -- यह सूक्ष्मतम ध्वनि होती है जिसे योगाचार्यो ने प्राणिकध्वनि कहा है।

वैखरी जप-साधना

मत्र जप का प्रारम्भ वैखरी से होता है और समापन परा मे। वैखरी जप का अर्थ है -- उच्चारणपूर्वक मत्र जपना। इस सस्वर तालबद्ध जप के निरतर अभ्यास से मस्तिष्क और इन्द्रियाँ जपात्मक-ध्वनि तरगो से भर जाती है, आन्दोलित हो उठती है। यद्यपि वैखरी स्थूल ध्वनि हमारे वासना शरीर तथा प्राण शरीर को विशेष प्रभावित नही कर सकती , क्योंकि, जबतक इन्द्रिय वातायन का द्वार बाहर की ओर खुला रहता है तबतक हम अन्तर्नाद को सुन नही सकते। मत्रशास्त्र के

अनुसार कोई भी मत्र, अनाहत नाद मे परिणत होने से पूर्व "सिद्ध मत्र" नही कहलाता। तात्पर्य यह है कि ईडा और पिंगला नाडी-पथ से बहनेवाला प्राण अन्तर्नाद की उत्पत्ति मे बाधक है, किन्तु, जब प्राण सूक्ष्म होकर सुषुम्णा-पथ से बहने लगता है, तब अन्तर्नाद (मत्र - सिद्धि) की सम्भावनाए प्रबल से प्रबलतम होती चली जाती है।

वैखरी जप के प्रयोग और उपयोग

यह वैखरी जप उन साधको के लिए विशेष आवश्यक है, जो स्वय को पूजा पाठ के समय विशेष चचल अनुभव करते है और मानस जप की साधना के बीच जिनको कभी-कभी विकल्प रूप विक्षेप सताते है। इस प्रकार के साधको को कुछ समय तक वैखरी जप और करना चाहिए। इस वाचिक जप की परिपक्वता से इष्ट के प्रति दृढ समर्पण भाव उत्पन्न होता है और वैखरी ध्वनि-तरगों के घर्षण से स्थूल शरीरगत व्याधिया शान्त हो जाती है। फलत साधक शरीर और मल दोनो से स्वस्थ, शान्त और निर्विकार होने लगता है।

अन्तिम तीनो प्रकार क्रमश सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम है। वैखरी जप से चित्त पर जमी स्थूल विकारो की परते क्षीण होती है। मध्यमा जप से सुषुम्णा-पथ निर्बाध होता है और पश्यन्ती से आत्मज्ञान व परा-जप से आत्म-दर्शन (पूर्ण ग्रथि भेद) की स्थिति उत्पन्न होती है। योग ग्रथो के अनुसार ध्वनि के तारतम्य से हमारी ग्रथियो से प्रवाहित होनेवाले रसस्त्राव (हारमोन) की मात्रा मे अन्तर आ जाता है। मध्यमा जप (सूक्ष्म जप) करते समय ब्रह्म रध्र से (पिट्यूटरी ग्लैण्ड) मात्र ९ रस बिन्दुओ का

स्त्राव होता है। पश्यन्ती जप से १२ और पराजप से १६ रस बिन्दुओ का स्त्राव होता है। इस ग्रथि से होने वाला रस-स्त्राव शारीरिक सपुष्टता के साथ मानसिक रचना मे विलक्षणता लाता है।

अव वाचिक-जप साधना के बाद यह अनुभव करना है कि प्राण (श्वास) सुषुम्णा-पथ से चलता है या अपनी चिर परिचित गति से चल रहा है। सुषुम्णावाही प्राण इस बात का प्रमाण है कि चेतना के कुछ स्तर विकसित हो गये है और मन मत्र के साथ लीन होने लगा है। यदि मन और प्राण कभी-कभी एक रस होते है तब भी विकास अवश्यम्भावी है। क्रम को वदलना नही है, बढते रहना है। जिन्हे वैखरी-जप से क्रमश प्रगति का अनुभव नही हो रहा है, वे इसके बाद उपाशु जप की साधना प्रारम्भ कर दे।

उपाशु जप साधना

यह मद-ध्वनि से किया जाने वाला मत्र-जाप, केवल कठो मे गूजता है, किन्तु मुख से उच्चारित नही होता। इसमे होठ हिलते हुए से प्रतीत होते है। तत्र विशेषज्ञो के अनुसार किसी सकट विशेष को दूर करने, देव शक्ति को आह्वान करने तथा ग्रह शान्ति और विशिष्ट उपलब्धि के लिए उपाशु जप करना चाहिए, क्योंकि वाचिक मत्र जाप से पर्याप्त स्थिरता उत्पन्न नही होती और मानसिक जप से प्रगट होने वाली विशिष्ट स्थिरता लम्बे समय तक टिकती नही, अत जप कर्ता को दूसरे चरण मे उपाशु जप का अभ्यास करना चाहिए। इस स्थिति को पार करने के बाद " मानस जप " जो ध्यान की पूर्व भूमिका है, वह स्वत चेतना के धरातल पर उतरने लगता है।

पूर्वोक्त दोनो प्रकार के जप का अभ्यास सविधि सम्पन्न होने के बाद "मानस जप" का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए। यद्यपि मानस जप मे मत्र वही रहता है, किन्तु मन से जपने के कारण उसका प्रभाव बढ जाता है। इस प्रभाव सवर्धन की प्रक्रिया मे मुख्यतम कारण है ध्वनि की सूक्ष्मता। मत्र के साथ मन की तन्मयता से ध्वनि सूक्ष्म होती है और ध्वनि की सूक्ष्मता से बढती है मानसिक-एकाग्रता। मन की शक्तियो के जाग उठने के बाद वाणी की उपेक्षा नही रहती। स्थूल-ध्वनि अर्थात् वाणी के साथ किया गया सकल्प इसीलिए सिद्ध नही होता है कि वह हमारी प्राण-तरगो को प्रभावित नही कर सकता। मानस-जप, हमारे प्राणो (तैजस शरीर) तक अपना प्रभाव पहुँचाता है। मत्र-शास्त्र मे एक स्थान पर लिखा है, भीड से एकान्त मे बैठकर जाप करना अच्छा है, एकान्त से मौन पूर्वक जाप करना और मौन से अधिक श्रेष्ठ है मानसिक जप करना।

इस जप का अभ्यासी बहुत तीव्रता से अपने विद्युत् शरीर को जगा लेता है। इस ऊर्जा शरीर के सक्रिय होने के बाद वह परामानसिक चेतना के द्वारा (अपने और पराए दोनो प्रकार के) अतीन्द्रिय जगत से सम्पर्क बनाए रखने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। इसी मानसिक एकाग्रता की स्थिति मे हमारा परामन स्थूल शरीर से बाहर निकलता है, करुणा रस से प्लावित होकर औरो की बीमारियो को स्वय मे खीचता है, कभी सकल्प शक्ति मे बदलकर औरो से अपने ऐच्छिक कार्य करवाता है और कभी मीलो दूर बैठे लोगो तक अपने विचार सम्प्रेषित करता है।

प्रारभ मे मानस जप श्वास के साथ चलता है। कुछ दिनो के अभ्यास के बाद वह अन्तर्नाद का रूप धारण करके गहराई मे उतर कर भीतर मे समा जाता है। निद्रा और जागरण, चेतना की इन दोनो अवस्थाओ मे बिना किसी प्रयत्न के सहज भाव मे सतत चलता रहता है। योग ग्रथो के अनुसार इसी का नाम अजपाजप है।

अजपाजप-साधना

यद्यपि जैन आत्म-उपासना पद्धति मे "अजपाजप" शब्द का स्पष्ट उल्लेख नही है, किन्तु इसके स्थान पर जैन आगमो मे भावना शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ है किसी एक सद् विचार के रग से चेतना को रगना। उसमे लीन हो जाना।

बौद्ध शासन मे अति प्राचीन काल से 'आनापान सती" का एक स्वस्थ साधना क्रम रहा है। वैदिक परम्परा मे गौरखनाथ जैसे अनेक नाथयोगियो ने इस साधना का प्रलम्ब अभ्यास करके चैतन्य की दिशा मे एक नया आयाम खोल दिया। सन्त कबीर, सूर और तुलसी ने इसके जो यशोगीत गाए है इन गीतो के पीछे गीता के "प्राण यज्ञ" का आधार रहा है। गीता की व्याख्या मे यज्ञ का अर्थ है -- स्थूल प्राणो को सूक्ष्म प्राणो मे होम देना -- विलीन कर देना (प्राणान् प्राणेषु जुह्वषि) इसी का नाम "अजपाजप" है।

साधना की निष्पत्ति सहजता का अवतरण है। इस स्थिति मे पहुच जाने के बाद किसी आलम्बन विशेष की अपेक्षा नही रहती। इस अभ्यास क्रम मे सर्व सुलभ और सर्वोत्तम उपाय

“अजपाजप” है। और तो क्या, यह क्रम हमारे जन्म की प्रथम सास के साथ जुडा हुआ है। फलित यह है - पहलाश्वास जन्म है, अन्तिम मृत्यु और इस बीच के शेप क्षण जीवन है। इस जीवन साधना का प्रारूप और निष्पत्ति दोनो अजपाजप है। इस साधना मे हमे न कुछ बाहर से लेना है और न कुछ छोडना है , किन्तु केवल अन्तर की ओर झाकना है, अपनी प्राण धारा के साथ बह जाना है।

अजपाजप - साधना के द्वारा हमारी चेतना आसानी से ध्यान कोष्टक मे प्रविष्ट हो जाती है। यह जप ध्यान की पूर्व भूमिका प्रशस्त करता है। इसके लम्बे अभ्यास के बाद चित्त की गहराई मे छुपे मानसिक विकार कभी धीमी गति से और कभी तेज गति से चेतन मन की परतोपर उभर आते है। यह उभार चित्त-शुद्धि का महानतम उपक्रम है। वृत्तियो की अन्तर्मुखता निष्फल होने के पूर्व यह जाप साधक के स्नायुतत्र, मस्तिष्क ततु, सुषुम्णा नाडी कुण्डलिनी जागरण सम्भावनाओ को प्रबल करता है।

प्रथम अभ्यास

अजपाजप साधना का कोई बधा-बधाया क्रम नही है। इसका अभ्यास किसी भी समय किसी आरामदायक आसन मे बैठकर, सोकर तथा खडे रहकर किया जा सकता है।

१ किसी आरामदायक आसन (शारीरिक स्थिति) मे स्थिर हो जाए।

२. आखे बन्द या अपलक-दृष्टि।

३ मेरुदण्ड सीधा, शरीर शिथिल और शान्त।

४ अपने चारो ओर नीरव वातावरण व गहरी शान्ति का अनुभव।

५ द्रष्टा भाव मे श्वास को देखे या अपने इष्ट-मत्र को दोहराए।

दूसरा अभ्यास

अजपाजप - साधना के दूसरे अभ्यास मे साधक किसी ध्यान मुद्रा मे बैठकर अन्तर त्राटक, मैत्री आदि चारो भावनाओ का अभ्यास तथा सुषुम्णा-पथ से सहस्त्रार और मूलाधार तक चेतना का प्रत्यावर्तन करे। इन चारोमे से किसी एक का अभ्यास करते-करते साधक मे अन्तर्दृष्टि जागृत होती है।



जप और ध्यान सिध्धि के फल

- *दिप्त और स्थिर आखे।*
- *स्वस्थ शरीर।*
- *कम उलझने।*
- *सकटमे धैर्य।*
- *भीतर से मस्तीका उदय।*
- *अस्वीकार शक्तिका विकास।*
- *इन्द्रिय शक्तिका विकास।*
- *सहज मौन, शाति।*

रंगों से मानव स्वभाव की पहचान

प्राचीन शरीर विज्ञान के अनुसार हमारा शरीर पाच तत्त्वो से बना है। इन तत्त्वो का आवश्यक परिमाण से न्यून या अधिक होना ही स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य का कारण है। कौन-सा तत्त्व बढा है या घटा है, इसकी सही जाच मलमूत्र, नाखून के रग, नाडी की गति, मुह का स्वाद तथा ब्लड टैस्टिग यह ध्यान के विविध प्रयोगो से की जाती है।

- *रगो के गुण धर्म*

रगो के द्वारा मनुष्य के स्वभाव की पहचान होती है। हम नैतिक है या अनैतिक, उत्तेजित है या अनुत्तेजित तथा हम उदार स्वभाव के है या स्वार्थी भाव के, हमारी रगीय अभिरूचि इस बात को प्रमाणित करती है। अव्यवस्थित चित्त वाला, सघर्ष प्रिय, स्वार्थी तथा घमण्डी होता है।

वर्त्तमान मे हुई वैज्ञानिक जाच के अनुसार मूल रग चार माने गए है क्योंकि श्वेत रग को स्वतन्त्र रग की सज्ञा नही दी गई है। यह सब रगो के साथ मिला होता है।

मूल रग

(१) लाल (३) हरा

(२) नीला (४) पीला

चार सहायक रग

(१) जामुनी (३) काला

(२) कत्थई (४) स्लैटी

एक तत्त्व चिन्तन के अनुसार काला रग मूल माना गया है क्योंकि काला रग सबसे अधिक व्यापक, ठोस गहरा रग है। इस रग की साधना के पूर्व (मुनि-पद के पूर्व) कोई भी साधक आचार्य, उपाध्याय, सिद्ध तथा अरिहन्त नही बन सकता, आरोहण नही कर सकता। यह रग विषय-वासनाओ को ललकारता है, उनकी सीमा करता है। इस रग की प्रधानता मे चित्त के क्लेशो को एक-एक करके शून्य-शात कर दिया जाता है।

लाल रग - प्रत्येक रग हमारे शारीरिक स्वास्थ्य और मनोभाव इन दोनो को प्रभावित करता है। एक ढाई साल का बच्चा अमुक प्रकार के खिलौने के लिए रोने लगा। पिता वही खिलौना तुरन्त दुकानदार से ले आया, किन्तु बच्चे ने उसे लेने से इन्कार कर दिया। पिता ने कहा, वेटे! यह वही खिलौना है जिसके लिए तुम माग कर रहे थे। वालक अपने जिद्द पर अडा रहा। आखिर मालूम हुआ कि इसका आग्रह अमुक आकार के खिलौने के लिए न होकर अमुक रग के खिलौने के लिए है। पिता ने वही खिलौना लाल रग का लाकर दिया, वालक खुशी से झूम उठा। अव पिता को यह जानते देर न लगी, मेरा बच्चा लाल रग की अत्यधिक प्रियता के कारण ही वार-वार उत्तेजित होता है, रोता है, चिल्लाता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक डॉक्टरो का कहना है, एलर्जी का एक बहुत बडा कारण है हमारी मानसिक पसन्द और नापसन्द।

लाल रग गर्मी, उत्तेजना, हिंसा, क्रोध तथा शारीरिक और मानसिक शक्ति सम्पन्नता का निमित्त है। इस रग की प्रधानता

वाले व्यक्ति सघर्षप्रिय होने के कारण सामाजिक तथा राजनैतिक अच्छे कार्यकर्ता बन सकते हैं।

लाल रग की शारीरिक प्रतिक्रियाए

१ यह शरीर की सफाई-शुद्धि करता है।

२ ठण्ड से उत्पन्न रोगो को मिटाता है।

३ कब्ज दूर करता है।

४ भूख बढाता है।

५ यह रक्तचाप बढाता है।

६ यह रोग प्रतिरोधक शक्ति देता है।

लाल रग की मानसिक प्रतिक्रियाए

१. लाल रग उत्तेजक स्वभाव वाला होता है।

२. लाल रग से दूर भागने वाला कन्ट्रोलहीन होता है।

३ लाल रग सबल सकल्प-शक्ति का प्रेरक है।

४ लाल रग मन को उत्साहित करता है, कुछ करने की क्षमता प्रदान करता है।

जैन मत्र साधन-विधि के अनुसार सिद्धो का जप लाल रग से किया जाता है। एक मत्रसाधक ने इस विधि से जाप प्रारम्भ किया। यह अपने आस-पास के वातावरण को, सिद्धो को तथा स्वय के शरीर को हल्के लाल रग से पुता देखता है। क्रमश साधक की तन्मयता बढती गयी। कुछ दिनो के बाद नाडी की गति, रक्त का दबाव तथा स्वैच्छिक मासपेशियो का उत्तेजना-स्तर बढता हुआ देखा गया। एक दिन नाक से खून तक गिरने लगा। बेहोश होगया। उचित उपचार से स्वस्थ होने के बाद यह

जानकारी प्राप्त हुई कि गहरे लाल रग के ध्यान से यह दुर्घटना घटित हुई है। क्रम परिवर्तन की सलाह के साथ दूसरे दिन सिद्ध-पद के स्थान पर उपाध्याय और मुनि पद का ध्यान हरे और नीले (काला) रग के साथ चालू किया। एक सप्ताह मे स्वस्थ एव बिना किसी दवा से रक्त-वेग शात हो गया।

एक मा ने बताया, जब-जब मै शिशु को लाल रग के कपडे पहनाती हू तब वह कुछ ही मिनटो के बाद बेचैन हो उठता है। नाड़ी की गति तथा रक्तचाप दोनो तेज हो जाते है। एक दिन की बात है, हम दोनो लाल कपडे पहने हुए थे। बालक मेरी गोद मे था। जैसे-जैसे समय निकल रहा था, बालक सुस्त होता जा रहा था। कुछ समय के बाद इसकी हालत बहुत बिगड गई। डॉक्टर पहुचा। उसने रक्तचाप को देखकर तुरन्त अस्पताल ले चलने की सलाह दी। बालक को अस्पताल पहुचाया गया। मा का सम्पर्क टूटा। कपडे बदले गए, बच्चा धीरे-धीरे स्वस्थ होता हुआ पाया गया।

सोवियत ध्वनि-विशेषज्ञ लोगो का कहना है कि एक रग दूसरे रग के साथ आने वाली विकृतियो की रोकथाम करता है। शहरी कोलाहल सहने मे जिन्हे कठिनाई होती है वे अपने निवास स्थान को यदि नीले या हरे रग से पुतवा देते है, उन्हे काफी शाति मिल सकती है। क्योंकि इन दोनो रगो मे ध्वनि-निरोधक क्षमता अन्य रगो की अपेक्षा विशेष होती है।

हरा रग- यह रग उत्साही, शात तथा स्थिर स्वभाव का सूचक है। इस रग को प्रमुखता देने वाला प्रकृति मे जीने का रसिक स्वाभिमानी तथा दृढ सकल्प वाला होता है। यही एक ऐसा रग है जो व्यक्ति को अनियत्रित क्रोध, रक्त-क्राति तथा निरकुश व्यक्तियो से बचाता है।

वर्तमान रग विशेषज्ञो का कहना है कि यदि प्रतिदिन नियमित रूप से हरी वस्तुओ के बीच रहा जाए तो कुछ शारीरिक तथा मानसिक बीमारियो से बचा जा सकता है। घर मे निराश-उदास होकर बैठने से अच्छा है कही प्रकृति की हरी-भरी गोद में बैठकर अपने मन को शांत कर ले।

नीला रग- यह रगो का राजा कहलाता है। गहरा नीला रग मन की शाति, सौम्य-भाव तथा शरीर की स्थिरता का निमित्त है। मन की अशाति के समय गहरे नीले रग का ध्यान विशेष सहायक होता है। जो लोक एकान्त नीले रंग को पसन्द करते है अर्थात् इस रग को प्रमुखता देते है उनके स्वभाव मे सभी मानवीय गुणो का अनुराग होता है। नीलें रग की ओर देखने से जिन्हे शाति प्राप्त नही होती है, वे अति साधारण मन स्थिति के होते है। कुछ विदेशी डॉक्टरो का कहना है नीला रग जो कुछ लाली लिये हुए होता है वह मानव शरीर से हर विकृत पदार्थ को बाहर करता है। दबे रोगाणुओ को निकालता है। गहरे नीले रग का अनुमान कैस्टर-ऑयल शीशी से लगा सकते हैं।

जो लोग नीले रग का सर्वथा तिरस्कार करके लाल को प्रमुखता देते है वे अत्यन्त उत्तेजक स्वभाव के होते है, किन्तु नीले रग की प्रमुखता के साथ जो लाल को स्वीकारते है वे कर्तव्योन्मुख, त्याग के प्रति विनम्र तथा शात स्वभाव वाले होते है।

पीला रग- यह रग कर्म मे प्रफुल्लता उत्पन्न करता है। इस रग की प्रधानता मे शक्ति, नम्रता, दयालुता तथा बुद्धिमत्ता जैसे

कई गुण प्रकट होते हैं। हल्का पीला रंग स्वार्थ भाव का सूचक माना गया है। यह लाल रंग की तरह उत्तेजक अवश्य है किन्तु उसकी अपेक्षा हल्का और कम विक्षेपक है। यह मन की गहराई बढ़ाता है। वहां पर तेजोमयता और पाचन शक्ति की सबलता इसी से प्राप्त होती है। पीले रंग का प्रेमी मस्ती का जीवन जीता है, संघर्षों का मुकाबला करता है। इसमे रूढता नहीं, नवीनता की ओर विशेष झुकाव होता है किन्तु जो पीले रंग पर अत्यधिक बल देता है वह घमण्डी स्वभाव का होता है।

काला रंग- यह रंग असीम और अपारधर्मा होता है। इस रंग से अधिक स्थायी गहरा और सक्रिय कोई दूसरा रंग नही होता। इस रंग का प्रेमी सिद्धान्त-प्रिय, त्यागी और विचारशील होता है। इसमे वर्तमान मे हुई रंगों की जाच के अनुसार काले रंग को प्रमुखता देने वाला संकल्पबली होता है। इसमे लक्ष्य पूर्ति के लिए सब कुछ त्याग देने का सामर्थ्य होता है। उसकी मानसिक शान्ति गहरी हो जाती है। वास्तविकता यह है, काला रंग किसी दूसरे रंग को स्वीकार नही करता। वह स्वय की मौलिकता का सदा गर्व अनुभव करता है।

श्वेत रंग- यह प्रत्येक रंग की विशेषता को अपनी ओर खींचता है। यह रंग पवित्रता का प्रतीक है। क्रोधादि - वृत्तियो की कलुषता से दूर रहने की भावना उत्पन्न करता है। धीरे-धीरे इस रंग का उपासक सदेह अवस्था मे राग-द्वेष से मुक्ति पा लेता है।

गौण रंग - जामुनी, भूरा तथा कत्थई जैसे गौण रगो को प्रमुखता देने वाला यह प्रकट करता है कि वह मानसिक तथा भावनात्मक दृष्टि से अपरिपक्व है। परिपक्व व्यक्ति मूल रंगो का ही चुनाव करता है।

रग ध्यान से रोग-शमन

आकाश और काल इन दोनो का परस्पर जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध तत्त्व (पचभूत) और रग के साथ है। रग हमारे स्वभाव और चरित्र का निर्माण करता है। जैन मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण विषय लेश्या इस बात को प्रमाणित करता है कि द्रव्य लेश्या अर्थात् जिन रगो तत्त्वो की हमारे शरीर मे प्रधानता है उसी रग के प्रति मानसिक अभिरुचि पैदा होती है। वही रगीय अभिरुचि हमारे विचार-जगत् और सस्कार-जगत् का सर्जन करती है। कभी-कभी शरीराश्रित रगो से विपरीत भी विचार परिणति होती है।

प्राचीन चिकित्सा विज्ञान के अनुसार बीमारी के मुख्य तीन कारण बताए गए है -- वात, पित्त और कफ। वायु जन्य बीमारियों का शमन अग्नितत्त्व अर्थात् लाल रग के ध्यान से होता है। पित्त प्रकोप या पित्त क्षय से होने वाली व्याधियो का शमन पृथ्वी तत्त्व अर्थात् पीले रग और जल तत्त्व क्षय से होने वाली व्याधियो का शमन पृथ्वी तत्त्व अर्थात् पीले रग और जल तत्त्व अर्थात् सफेद तत्त्व के ध्यान से होता है। यदि किसी को त्रिदोष के कारण व्याधि है तो आकाश तत्त्व के ध्यान से वह शान्त हो सकती है। वर्तमान सम्पूर्ण रग चिकित्सा इसी मान्यता पर आधारित है।

मत्र वह शक्ति है, जिसके, द्वारा शारीरिक, देविक, मानसिक और आध्यात्मिक चारो ही प्रकार के -- रोग मिटाए जा सकते है।

कुछ प्राचीन जैन आचार्य रक्त की गति और ग्रहो की चाल से अपने शिष्यो के अन्तरजगत का यथार्थ अनुमान लगाकर इन दोनो के -- असन्तुलन से उत्पन्न रोगो की चिकित्सा करते थे।

वात-कफ व्याधि · रग का ध्यान

लाल रग शक्तिवर्द्धक (उत्तेजक) होने के साथ-साथ कर्म ग्रथियो का भेदक भी है। जिन्हे वात और कफ के कारण कोई शिकायत है, वे प्रात और साय "णमो सिद्धाण" की लाल रग के साथ दो माला फेरे। इस अभ्यास-सम्पन्नता के १५ मिनिट बाद "णमो आयरियाण" की पीले रग के साथ एक माला अवश्य फेरे, क्योंकि, इन दोनो मन्त्र-पदो के अक्षर समवेत होकर स्वास्थ्य लाभ, लक्ष्मी प्राप्ति और आत्म शुद्धि -- इन तीनो क्षेत्रो मे महान कार्य करते हैं। इन दोनो पदो मे मुख्यतया शक्ति बीज "र", लक्ष्मी बीज - 'अ' आत्म सिद्धि का हेतु "य", भौतिक अभिसिद्धि का कारण "म" सकट का निवारक "ण" जेसे कई बीजाक्षरो का इसमे प्रयोग हुआ है।

पित्त-जनित सामान्य व्याधियो के उपशमन हेतु श्वेत, नील और हरे रग की विशेष धारणा करनी चाहिए। ये तीनो ही रग मानसिक स्थिरता और मानसिक शान्ति बनाए रखने मे विशेष सहयोग करते है।

रग के क्षेत्र मे हुई अब तक की जाच के अनुसार यह सिद्ध हो चुका है कि यदि कोई जब तक किसी एक रग की अतिप्रियता के कारण शेष एक-दो या अन्य सभी रगो से घृणा करता है तो उसके शारीरिक तथा मानसिक सन्तुलन मे बराबर बाधा बनी रहती है। क्योंकि जैसे पाचो तत्त्वो के सम्मिश्रण से मानव शरीर की रचना होती है, ठीक वैसे ही पाचो रगो की सन्तुलित भाव दशा मे स्वस्थ मानव-प्रकृति का निर्माण होता है। अत मानसिक स्वास्थ्य और स्थिरता की दृष्टि से शरीर मे पाचो का सन्तुलन अनिवार्य माना गया है।

साधक आत्मलक्षी होता है इसलिए उसके भाव विकास के लिए पाचो का समुचित योग आवश्यक है किन्तु सकट-निवारण, शत्रु-विजय, रोग-विनाश, चमत्कार-प्रदर्शन तथा देवाकर्षण जैसी अपेक्षा उत्पन्न होने पर किसी एक रग का उपयोग किया जा सकता है।

नमस्कार महामत्र विशिष्ट अध्यात्म शक्तियो का सवाहक मत्र है। ये शक्तिया मूल रगो से प्रेरित है। इनके जप और ध्यान के समय यदि साधक अपने निर्धारित रगो पर एकाग्रता का भाव बढाता है तो उसका स्नायुतत्र, श्वास-प्रश्वासतत्र, रक्तचाप तथा भावनात्मक केन्द्र बहुत तीव्रता से प्रभावित होता है। कभी-कभी रगीय ध्यान से साधक का शारीरिक उत्तेजना-स्तर बढता हुआ प्रतीत होता है, उस समय या तो आलम्बन का परिवर्तन कर लिया जाय अथवा प्राणायाम चालू कर दे। साधारण स्थिति निर्मित होने के वाद पुन उसी क्रम को प्रारम्भ किया जा सकता है।

रगों के साथ महामत्र जप की विधि

१ णमो अरिहताण — श्वेत प्रभा मे ध्यान
२ सिद्धाण — लाल प्रभा मे ध्यान
३ आयरियाण — पीली प्रभा मे ध्यान
४ उवज्झायाण — नीली प्रभा में ध्यान
५ णमो लोए सव्व साहूण — काली प्रभा मे ध्यान।

नोट- १ प्रत्येक रग को ज्योतिर्मय देखना है।

२ अपने आराध्य सिद्ध को हल्के रग से पुता हुआ देखना है। यदि केन्द्रो को ध्यान मे रखा जाए तो बहुत जल्दी मत्र सिद्ध हो सकता है।

परमेष्ठी के केन्द्र स्थान

१ अरिहत — मस्तक स्थान - ज्ञान केन्द्र
२ सिद्ध — भृकुटी स्थान - दर्शन केन्द्र
३ आचार्य — हृदय स्थान - विशुद्धि केन्द्र
४ उपाध्याय — नाभि स्थान - आनद केन्द्र
५ साधु — चरण कमल - तैजस केन्द्र

मन की चपलता के मुख्य दो कारण माने गये है -- वासना और विकृत प्राण वायु। जैन मत्र स्रष्टा आचार्यों ने इन्ही दोनो कारणो को ध्यान मे रखकर मत्र-जप की सम्पूर्ण विधियो का आविष्कार किया है।

प्रथम विधि : रग धारणा

शास्त्रो मे मानसिक स्थिरता (प्राण-विजय) के लिए मत्र-जप के साथ विविध रगो की परिकल्पना की गयी है। वहॉ बताया है कि रग, शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ मन को तनाव-मुक्त करके शात और सुस्थिर बनाते है। विदेशो मे "रग ध्यान" (कलर मेडिटेशन) का सक्रिय प्रयोग इसी आधार पर किया जाता है। प्रत्येक रग का अपना स्वतत्र प्रभाव होता है, किन्तु, एक निश्चित समय के बाद मानसिक एकाग्रता के कारण उस रग के प्रभाव मे विशेष अन्तर आ जाता है। किसी एक ही रग का विशेष ध्यान करने से मत्र की शक्ति अवश्य बढती है, पर वह मत्र शक्ति कभी-कभी मारक और उच्चाटक बन जाती है , किन्तु, नमस्कार महामत्र का जाप किसी एक रग-विशेष से सबधित नही है, क्योंकि, पाचो रगो के सन्तुलन से ही सहज मानसिक सन्तुलन फलित होता है और वात, पित्त और कफ की समता उत्पन्न होती है।

रगो के स्वभाव

लाल रग	-	वशीकरण करनेवाला।
पीला रग	-	स्तम्भन (रोकने) करनेवाला।
काला रग	-	मृत्यु और पीडा देनेवाला।
नीला रग (हरा)	-	प्रतिपक्षी को विक्षुब्ध करनेवाला।
श्वेत रग	-	कर्म निर्जरा करनेवाला।

रेखा विज्ञान के अनुसार

अगूठा	-	श्वेत रग का स्वामी
प्रथम अगुली भाग	-	पीले रग का स्वामी

मध्यम भाग - लाल रंग का स्वामी

अग्रिम भाग - नीले रंग का स्वामी

पिछला भाग - काले रंग का स्वामी

सूर्य किरण चिकित्सा के अनुसार

लाल रंग - वात-कफ नाशक व दर्द मिटानेवाला।

पीला रंग - पाचक और अग्निवर्धक

हरा रंग - गर्मी शान्त करनेवाला व कातिवर्धक।

नीला रंग - रोग-प्रतिरोधक नियत्रक।

श्वेत रंग - शारीरिक सामर्थ्य का हेतु।

रंगों से मन की स्थिरता का अनुमान

सामान्यतया काला रंग मन की मलिनवृतियो का सूचक माना जाता है, किन्तु, यदि वह लम्बे समय तक स्थिर रहता है तो वह सशोधित होकर नीले रग में बदल जाता है। इसके बाद क्रमशः मन्त्र-साधक के चारो ओर लाल-रग तैरने लगता है। इसका तात्पर्य यह है कि अब कर्म-ग्रथियाँ आरक्त होने लग गयी है। जब स्फटिक जैसा अति स्वच्छ श्वेत-रग उभरने लगता है, तब यह सुस्पष्ट हो जाता है कि चेतना-सागर में ज्ञान ऊर्मियाँ उठने लगी है।

ग्रह पीड़ा : महामंत्र जप

ज्योतिष-विद्या के अनुसार ग्रह मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करते है। उनकी विपरीत दशा मे सासारिक और आध्यात्मिक - दोनो -- प्रकार के अभ्युदय मे विविध अवरोध उत्पन्न होते है। उन अवरोधो को निष्क्रिय बनाकर अपने पथ को निष्कटक बनाए रखने के लिए अमुक ग्रह के उदय काल मे अमुक प्रकार के रग का ध्यान और माला-जाप किया जाए, ऐसा विधान है।

सूर्य ग्रह की दशा मे	--	लाल माला से जप।
चन्द्र ग्रह	--	श्वेत माला से जप।
मगल ग्रह	--	लाल माला से जप।
बुध ग्रह	--	नीली माला से जप।
बृहस्पति ग्रह	--	पीली माला से जप।
शुक्र ग्रह	--	श्वेत माला से जप।
शनि ग्रह	--	कृष्ण माला से जप।
राहु ग्रह	--	कृष्ण माला से जप।
केतु ग्रह	--	नीली माला से जप।

१	सूर्य ग्रह	-	ओम् ह्रीं णमो सिद्धाण - दस हजार जप
२	चन्द्र ग्रह	-	ओम् ह्री णमो अरिहन्ताण - दस हजार जप
३	मगल ग्रह	-	ओम् ह्री णमो सिद्धाण - दस हजार जप
४.	बुध ग्रह	-	ओम् ह्री णमो उवज्झायाण - दस हाजारजप
५	बृहस्पति ग्रह	-	ओम् ह्री णमो आयरियाण - दस हजार जप
६	शुक्र ग्रह	-	ओम् ह्री णमो अरिहन्ताण - दस हजार जप
७	शनि ग्रह	-	ओम् ह्री लोए सव्व साहूण - दस हजार जप
८	राहु ग्रह	-	सम्पूर्ण नमस्कार मत्र - दस हजार जप
९	केतु ग्रह	-	सम्पूर्ण नमस्कार मत्र - दस हजार जप

प्राणायाम : महामंत्र जप

जप-साधक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह प्राण तथा तत्सम अन्य सूक्ष्म जीवनी शक्तियों पर संयम करना सीखे, क्योंकि योग शक्ति जागरण का विज्ञान है प्राणायाम उन सूक्ष्म शक्तियों के उत्थान का एक सरल तरीका है।

कई लोग प्राणायाम को श्वास-क्रिया मात्र समझते हैं, किन्तु, इसकी परिभाषा और अधिक व्यापक है। प्राणायाम स्नायु संस्थान को सक्रिय बनाकर ध्यान के योग्य शारीरिक और मानसिक क्षमताओं की भूमिका तैयार करता है तथा चित्त के अन्तर्मुखी बनने में सहयोग करता है।

श्वास और मन का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। एक की चपलता दूसरे की चपलता का कारण है और एक की स्थिरता दूसरे की स्थिरता का कारण है। श्वास-प्रश्वास की गति के साथ नमस्कार महामन्त्र का जाप प्रारम्भ करने के पूर्व अथवा उसके साथ किसी एक प्रकार का प्राणायाम अवश्य चालू रखें।

नाड़ीशोधन - प्राणायाम

ज्योतिष-विद्या के अनुसार ग्रह मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करते है। उनकी विपरीत दशा मे सामाजिक और आध्यात्मिक - दोनो -- प्रकार के अभ्युदय मे विविध अवरोध उत्पन्न होते है। उन अवरोधो को निष्क्रिय बनाकर अपने पथ को निष्कटक बनाए रखने के लिए अमुक ग्रह के उदयकाल मे अमुक प्रकार के रग का ध्यान और माला-जाप किया जाए, ऐसा विधान है।

सूर्य ग्रह की दशा मे -- लाल माला से जप।
चन्द्र ग्रह -- श्वेत माला से जप।
मगल ग्रह -- लाल माला से जप।
बुध ग्रह -- नीली माला से जप।
बृहस्पति ग्रह -- पीली माला से जप।
शुक्र ग्रह -- श्वेत माला से जप।
शनि ग्रह -- कृष्ण माला से जप।
राहु ग्रह -- कृष्ण माला से जप।
केतु ग्रह -- नीली माला से जप।

१ सूर्य ग्रह - ओम् ह्रा णमो सिद्धाण - दस हजार जप
२ चन्द्र ग्रह - ओम् ह्री णमो अरिहन्ताण - दस हजार जप
३ मगल ग्रह - ओम् ह्री णमो सिद्धाण - दस हजार जप
४. बुध ग्रह - ओम् ह्री णमो उवज्झायाण - दस हजारजप
५ बृहस्पति ग्रह - ओम् ह्री णमो आयरियाण - दस हजार जप
६ शुक्र ग्रह - ओम् ह्री णमो अरिहन्ताण - दस हजार जप
७ शनि ग्रह - ओम् ह्री लोए सव्व साहूण - दस हजार जप
८ राहु ग्रह - सम्पूर्ण नमस्कार मत्र - दस हजार जप
९ केतु ग्रह - सम्पूर्ण नमस्कार मत्र - दस हजार जप

प्राणायाम : महामंत्र जप

जप-साधक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह प्राण तथा तत्सम अन्य सूक्ष्म जीवनी शक्तियो पर सयम करना सीखे, क्योंकि, योग शक्ति जागरण का विज्ञान है प्राणायाम उन सूक्ष्म शक्तियो के उत्थान का एक सरल तरीका है।

कुछ लोग प्राणायाम को श्वास-क्रिया मात्र समझते है, किन्तु, इसकी परिभाषा और अधिक व्यापक है। प्राणायाम स्नायु सस्थान को सक्रिय बनाकर ध्यान के योग्य शारीरिक और मानसिक क्षमताओ की भूमिका तैयार करता है तथा चित्त के अन्तर्मुखी बनने मे सहयोग करता है।

श्वास और मन का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। एक की चपलता दूसरे की चपलता का कारण है और एक की स्थिरता दूसरे की स्थिरता का कारण है। श्वास-प्रश्वास की गति के साथ नमस्कार महामन्त्र का जाप प्रारम्भ करने के पूर्व अथवा उसके साथ किसी एक प्रकार का प्राणायाम अवश्य चालू रखें।

नाड़ीशोधक - प्राणायाम

जाप और ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था मे नाडी शोधन का अभ्यास आवश्यक है। इससे शरीर की शुद्धि और मन की स्थिरता बराबर बनी रहती है। इस प्राणायाम के प्रथम चरण मे केवल रेचक से पूरक और पूरक से रेचक -- ये दो ही आवृत्ति की जाती है। इस क्रम मे स्वर दाएँ-बाएँ अवश्य बदलना चाहिए।

प्रथम विधि :

णमो अरिहन्ताण - श्वास लेते समय
णमो सिद्धाण - श्वास छोडते समय
णमो आयरियाण - श्वास लेते समय
णमो उवज्झायाण - श्वास छोडते समय
णमो लोए - श्वास लेते समय
सव्व साहूण - श्वास छोडते समय

इस विधि से माला फेरने से कुछ ही क्षणो मे हमारा मन शान्त होने लगता है। इस प्रकार की एक आवृत्ति मे तीन उच्छ्वास होते हैं। पूरी माला मे ३२४ श्वास-प्रश्वास का परावर्तन होता है।

दूसरी विधि :

दिगम्बर साहित्य मे नो बार महामत्र के जाप करने पर बल दिया गया है। वहाँ भी इसी पूर्वोक्त विधि का उल्लेख प्राप्त होता है। अन्तर केवल इतना-सा है कि श्वास लेते समय कुछ नही बोलकर श्वास छोडते समय प्रथम दो पक्तियाँ बोली जाए, क्रम इस प्रकार बनता है --

१ णमो अरिहन्ताण
णमो सिद्धाण } - श्वास छोडते समय
२ णमो आयरियाण
णमो उवज्झायाण } - श्वास छोडते समय
३ णमो लोए सव्व साहूण - श्वास छोड़ते समय

दूसरा क्रम यह भी प्राप्त होता है --श्वास भरते समय णमो अरिहन्ताण, णमो सिद्धाण। श्वास रोककर -- णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण। श्वास छोडते -- णमो लोए सव्व साहूण। इस प्रकार कम-से-कम नो नमस्कार- महामत्र का प्रतिदिन प्रात और साय प्रतिक्रमण तथा प्रत्येक धार्मिक क्रिया के पूर्व जाप करने का विधान है।

तीसरी विधि:

कुम्भक मे (रुके हुए श्वास मे) मन की जैसी स्थिरता बनती है, वैसी सामान्यत रेचक और पूरक मे नही बनती। अत नमस्कार महामत्र जाप के लिए एक ऐसी पद्धति सुझायी गयी है, जिससे मानसिक अस्थिरता की समस्या धीरे-धीरे समाहित हो जाती है।

किसी एक स्थिर (ध्यानासन) आसन मे बैठकर प्राणायाम करे। इसके बाद तुरन्त धीरे-धीरे एक लम्बी एव गहरी साँस भरकर उसे हृदय मे धारण करे और उस रुकी साँस मे पूरे महामत्र का एक बार मानसिक ध्यान करे। इस प्रकार, पाँच बार श्वास का पूरक करे और हृदय-कमल (गुरु स्थान-आनन्द केन्द्र) मे महामत्र की धारणा करे।

चतुर्थ साधन-विधि

१ रेचक-जप - निकलते श्वास के साथ पूरे पद का धीरे-धीरे मन-ही-मन उच्चारण करे।

२ पूरक-जप - ग्रहण करते श्वास के साथ सपूर्ण मत्र का स्थिरता से उच्चारण करे।

३ कुभक-जप - रुके हुए श्वास में पूर्ण पद का स्मरण।

४ सात्विक-जप - किसी उपासना-सामग्री के विना निष्काम भाव से एकान्त मे बैठकर गुप्त रूप मे जाप करना।

५ राजसिक-जप - ठाठबाट, साज-सज्जा तथा पूर्व तैयारी के साथ बैठकर जप करना।

६ तामसिक-जप - धन और पद-सत्ता जैसे किसी लाभ के लिए जपकरना तामसिक जप कहलाता है।

७ इन्द्रिय शोधक जप - प्रथम पद को बाये कान के भीतर अनुभव करते हुए स्मरण करे, दूसरे बायी आख पर, तीसरे का दार्यी आख पर, चौथे का दाए कान पर और पाचवे का मुख द्वार पर। इस विधि से मत्र जाप करने वाला इन्द्रिय-शक्ति की क्षीणता से होने वाले खतरों से स्वय को बचाता है। इन्द्रिय-ज्ञान की सामान्य सीमा से आगे बढने का द्वार खुलता है।

卐 卐 卐

-: गृह शान्ति मंत्र :-

ॐ ह्री श्रीं अ सि आ उ सा सर्व विध्न रोगोपद्रव

विनाशनाय मम गृहशान्तिं कुरू कुरू स्वाहा ।

यह जाप सुबह शाम २७ बार अवश्य करना है ।

चैतन्य केंद्र जागरण : महामंत्र - जप

पूर्व प्रकरणो से हम यह भलीभाँति जान चुके है कि मत्र-योग के द्वारा हमारे अन्दर स्थित केन्द्र (ग्रन्थि) और कुण्डलिनी जागरण की सम्भावनाएँ प्रबल हो उठती है। कहाॅ, कौन-सा केन्द्र, क्या कार्य कर रहा है इन सभी क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ के प्रति हमारी चेतना सजग हो उठती है।

जैन साधना पद्धति मे जप-अनुष्ठान का महत्त्वपूर्ण आयोजन रहा है। जब तक नमस्कार महामत्र का सविधि अनुष्ठान (उपधान) नही कर लिया जाता है, तबतक साधक को प्रतिदिन किए जानेवाले माला-जप का विशेष लाभ प्राप्त नही होता। महानिशीथ सूत्र मे उपधान की विधि का वर्णन इस प्रकार दिया है -

साधक शुभ तिथि और शुभ वार को देखकर अत्यन्त आदर के साथ एकान्त स्थान मे जाकर अरिहन्त-वन्दनापूर्वक " महामत्र उपधान " प्रारम्भ करे।

- प्रथम दिन — णमो अरिहन्ताण
- दूसरे दिन — णमो सिद्धाण
- तीसरे — णमो आयरियाण
- चोथे दिन — णमो उवज्झायाण
- पाच मे दिन — णमो लोए सव्वसाहूण
- छठे दिन — एसो पचणमुक्कारो
- सात मे दिन — सव्व पावपणासणो
- आठवे, नवमे दिन — मगलाण च सव्वेसि

  पढम हवइ मगल।

कहते है कि गौतम स्वामी ने विधि की कठोरता को जानकर भगवान से पूछा -- "भन्ते! साधारण मनुष्य इस कठोर विधि का पालन कैसे कर सकेगा?" भगवान ने कहा -- "गौतम! इस विधि से सिद्ध नही किया गया मत्र, हमारा कल्याण नही कर सकता।" इस शास्त्रीय व्याख्यान से स्पष्ट है कि किसी एक विधि से महामत्र को अवश्य सिद्ध कर लिया जाए।

मत्र-सिद्धि के लिए आवश्यक है कि साप्ताहिक, मासिक या त्रैमासिक अनुष्ठान के रूप मे जप योग की तन्मयता पूर्वक साधना की जाए। जैन मत्र साहित्य मे यद्यपि केन्द्र जागरण की कोई चर्चा नही है, किन्तु, उसके स्थान पर "कमल" शब्द का प्रयोग हुआ है, जैसे - हृदय कमल, नाभि कमल आदि आदि।

नाभि-कमल जागरण (मणिपूर शुद्धि) तेजस केन्द्र शुद्धि

१. किसी एक आरामप्रद आसन मे स्थिर हो।

२ मेरूदण्ड सीधा, ऑखे बन्द, शरीर शिथिल।

३ नाभि केन्द्र मे हो रहे श्वास-प्रश्वास के प्रकम्पनो को पॉच मिनिट तक सजगता से देखे।

४ इसके तुरन्त बाद नमस्कार महामन्त्र का मानसिक जप चालू कर दें।

५ जप-सख्या को याद रखने के लिए या तो एक छोटी (२७) माला तैयार कर ले या समय की सीमा बाध ले।

हृदय कमल जागरण आनद केन्द्र शुद्धि

१ किसी एक स्थिर आसन मे बैठे।

२ आँखे बन्द, शरीर शिथिल, मेरूदण्ड सीधा।

३ हृदय केन्द्र पर हो रहे श्वास के प्रकम्पनो का अनुभव करे तथा पाँच मिनिट तक श्वास की गति को सारे शरीर मे होते हुए देखे।

४ इसके तुरन्त बाद हृदय पर नमस्कार मत्र का १५ बार जाप करे।

कण्ठ-कूप मे धारणा (विशुद्धिकेन्द्र-शुद्धि)

१ किसी एक आसन मे बैठकर शरीर को ढीला छोड दे।

२ नाभि से उठती हुई श्वास को कण्ठ तक ले जाएँ और फिर कण्ठ से नाभि की ओर जाते हुए देखे। इस प्रकार, मन की स्थिरता बहुत जल्दी बनती है।

३ अब गले से श्वास-प्रश्वास क्रिया होने दे।

४ इसके बाद विशुद्धि केन्द्र से ऊपर श्वास-गति की धारणा करे और उसी प्रकार वापिस नीचे (कण्ठ तक) ले जाएँ। इस आरोहण और अवरोहण क्रिया के बीच मन्त्र जाप चलता रहेगा।

भृकुटी पर जप दर्शन केन्द्र शुद्धि

१ पूर्वोक्त सभी विधियो को दोहराते हुए भृकुटि मार्ग से हो रही श्वास-प्रश्नास क्रिया को सजगता से देखे।

२ इस स्थान पर पाँच मिनट तक अपने मन (दृष्टि) को

एकाग्र करे, फिर इसके बाद ध्यान को पीछे की ओर (मेरूदण्ड में स्थित चोटी बॉधने का स्थान) मोड ले। वह चेतना का सबसे अधिक सक्रिय भाग है, इस पर पॉच मिनट रुके। दोनो मे से जिस स्थान पर ध्यान ज्यादा टिकता हो, उसी पर एकाग्र होकर जाप चालू कर दे, २५ आवृत्ति के बाद मन को मस्तक भाग (तालु स्थान) पर एकाग्र करे।

मस्तिष्क पर धारणा ज्ञान केन्द्र

१ जिस आसन मे माला-प्रारम्भ करते समय बैठे थे, उसी मे स्थिरतापूर्वक बैठे रहे।

२ ध्यान तालु-स्थान (मस्तक का अग्रिम-भाग) पर रहे।

३ पॉच मिनट तक केन्द्र पर हो रहे स्पन्दनो का अनुभव करे।

४ इसके बाद उसी केन्द्र पर महामत्र का मानसिक ध्यान (२५ आवृति) करे। इस प्रकार अन्त मे दीर्घ श्वास के साथ ९ बार महामत्र का जप करने से एक विधि सम्पन्न हो जाती है।

महामत्र जप की कुछ अन्य सरल विधियॉ

कमल बन्ध जप:

(क) हृदय भाग मे एक खिले हुए पॉच पखुडीवाले कमल की कल्पना करे। पॉच मिनट तक इस कल्पना को स्पष्ट करते जाऍ, फिर क्रमश प्राणवायु को इस कमल पर धारण करे। इस स्थिति के निर्मित होने के बाद नमस्कार महामन्त्र का मानसिक जाप करे। इस अभ्यास से ध्यान की सुदृढ भूमिका तैयार होती है, फलत कठोर कर्मों की महान निर्जरा होने से आत्म दर्शन के भाव प्रबल होते हैं।

(ख) इस कमल मे नो पखुडियॉ होती हैं। क्रमश नो पद की धारणा करके प्राणवायु और मन का सयम हृदय प्रदेश मे किया जाता है। शेष विधि पूर्ववत् है।

शरीर के विशेष अवयव महामत्र जप

१ णमो अरिहन्ताण - मस्तक (तालु स्थान) पर
२ णमो सिद्धाण - भृकुटि पर
३ णमो आयरियाण - कण्ठ पर।
४ णमो उवज्झायाण - हृंदयपर
५ णमो लोएसव्व साहूण - नाभिपर

मुख मण्डल. महामत्र जप

णमो अरिहन्ताण - बाएँ कान पर
णमो सिद्धाण - बाएँ नेत्र पर
णमो आयरियाण - दाएँ नेत्र पर
णमो उवज्झायाण - दाएँ कान पर
णमो लोए सव्व साहूण - मुख (ओष्टपुट) पर

इस प्रकार जैन साहित्य मे नमस्कार महामत्र-जप की अनेक विधियाँ निर्दिष्ट हुई हैं। उनमे से कुछ विधियाँ आपके सामने प्रस्तुत की गई है। आशा है, इन विधियो से साधक की मानसिक चपलता की शिकायत सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगी।

तीर्थंकर : उपासना विधि

जैन परम्परा मे चौवीस तीर्थंकरो की मान्यता है। तीर्थकर श्रमण साधना के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ होते हैं। वे अनादि काल से प्रवहमान धर्म सरिता की धारा को नया मोड देकर उस जल-स्त्रोत को जन-भोग्य बनाते है।

प्रत्येक तीर्थकर अपने युग के परम आस्था-केन्द्र होते है। वे जन-भाषा मे बोलते है और जन जागरण की दिशा मे सोचते है। इन्ही दो प्रवृत्तियो के कारण वे अपने युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते है, अर्थात् युगद्रष्टा और युग-स्त्रष्टा - इन दो पदो के गुरूतर दायित्व का सर्वात्मना निर्वहन करते है।

तीर्थकरो का मानस जब विश्वमानव की पीडाओ से बैचेन और व्यथित हो उठता है, तब वे "प्रेम के मसीहा" के रूप मे जनता के बीच आकर उन्हे दुख-मुक्ति का दिशा-बोध देते है, अर्थात् ज्ञान दर्शन और चरित्र का 'त्रिवेणी-सगम' यह हमारा पार्थिव शरीर बने, इसी जन्म मे बने और इसी क्षण बने, यह आत्म प्रेरणा जन-जन मे उत्पन्न करते है।

इस प्रकार, तीर्थकर हमारी परमार्थ-चेतना के उत्प्रेरक होते है। जो हमारी सुप्त अध्यात्म-चेतना को जगाता है, वह हमारा परमोपकारी होता है और जो परमोपकारी होता है, वह हमारे लिए स्तवन-योग्य बन जाता है।

तीर्थंकर-स्तुति और तीर्थंकर-जप की परम्परा जैन शासन मे कब से प्रारम्भ हुई, यह बताना बहुत आसान है, क्योंकि हर तीर्थंकर, सर्वज्ञता और वीतरागता के कारण अपने युग मे सम्पूर्ण

मानव जाति के आराध्य बन जाते है। इन्द्र के द्वारा कृत "शक्र-स्तव" और गणधर सुधर्मा के द्वारा रचित "वीर-स्तुति" इसके प्रमाण है। यह बहुत सम्भव लगता है कि उनकी विद्यमानता मे माला-जप पद्धति प्रारम्भ हो गई हो, किन्तु, प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि चौवीस तीर्थंकरो के साथ यह २४ शासन-सेवक यक्ष-यक्षिणियो की मान्यता कब से प्रारम्भ हुई और वह क्यो हुई? क्या तीर्थंकरो की अतिशय सम्पन्नता से वढकर उन्हे गुरुतर गरिमाएँ प्राप्त थी? इसके साथ यह भी एक प्रश्न उठता है, तीर्थंकर प्रतिमाओ के साथ ये प्रतीक-चिह्न क्यो जोडे गये? क्या उनका भी कोई आत्म उन्नयन मे मौलिक उपयोग है?

ऐतिहासिक तथ्यो के अनुसार जैन शासन मे देव-देवियो की यह उपासना पद्धति तात्रिक युग के प्रभाव से आयी, ऐसा उल्लेख मिलता है, किन्तु जैनाचार्यों ने इनकी उपासना को हजारो वर्षों तक अनिवार्य नही बनने दिया, क्योकि, देव स्वय जैन शासन के श्रद्धावान उपासक होते हैं। उन्हे उपास्य माननेवाला दृष्टि-दोष से दूषित होता है। आचार्य मानतुग, सिद्धसेन तथा हेमचन्द्राचार्य के युग तक जितने भी स्तुतिग्रथ, भक्ति-काव्य, छन्द, वीशिका और स्तोत्र रचे गये, उन सब मे एकान्तत तीर्थंकर-वीतराग आत्माओ की स्तवना प्राप्त होती है। इसके वाद क्रमश शासन-सेवक देव-देवियो से सम्बन्धित स्तोत्र निर्मित होने लगे, जिनमे रोग नाश, अर्थ प्राप्ति, पुत्र प्राप्ति, मित्र मिलन, ग्रह शान्ति जैसी सभी प्रकार की कामनाएँ की गयी। एक ऐसा भी दौर चला, जव एक साथ दोनो की स्तुतियाँ होने लगी। कुछ अशो मे आज-भी वह क्रम चल रहा है।

प्रत्येक तीर्थंकर का निर्धारित चिन्ह होता है। लक्षण होता है। दो तीन प्रतिमाओ को छोड कर सभी तीर्थंकर - प्रतिमाए एक जैसी होती है। उनकी भिन्नता एक मात्र निर्भर करती है उन चिन्हो पर जो हर प्रतिमा पर उत्कीर्ण मिलते हैं। चिन्हो, लाछनो, लक्षणो के विषय मे एक महत्त्व पूर्ण प्रश्न सामने आता है कि इन चिन्हो का तीर्थंकर-चरित्र एवं उनकी शरीर सम्पदा के साथ क्या सम्बध है ? ये चिन्ह गरिमा मडित क्यो है ?

इस सदर्भ मे अन्तिम बात कहना तो आज भी कठिन है। अन्वेषणीय है, किन्तु एक जगह यह उल्लेख मिलता है, इन्द्र भगवान के शरीर पर अभिषेक के समय जो चिन्ह, रेखाकृतिया, लक्षण देखता है, उन्ही के आधार पर प्रतीको की व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त भी कुद्द कारण हो सकते है।

चौबीस चिह्न : उनकी सार्थकता

भारत मे अति प्राचीन काल से प्रतिकोपासना की पद्धति रही है। कुछ प्रतीक (चिह्न) मागलिक माने गये है और कुछ ज्ञान-विज्ञान, कला-सौदर्य तथा ईश्वरीय-विभुता से अन्वित माने गये है। मुख्यत दो तरह के प्रतीक होते है --

प्रथम श्रेणी -- कल्पित तथा जड प्रतीको की परम्परा, जैसे-स्वस्तिक, कलश, कमल, चक्र, कल्पवृक्ष, शख, श्री इत्यादि।

दूसरी श्रेणी -- कालान्तर मे कुछ पशुओ को मगलमयता प्रदान की गयी, जैसे -- सिह, बैल, गौ, हस, मीन, मोर, अश्व, हिरण आदि। लगता है कि इसी आधार पर वेदोक्त देवताओ के वाहन विविध प्रकार के पशु-पक्षी निर्धारित किये गये है।

लगभग इन सभी प्रतीकों का प्रयोग जैन, बौद्ध तथा हिन्दू धर्मों मे यथावश्यक हुआ है। कालान्तर मे ये चिह्न सामुदायिक-मगलरूपता के अतिरिक्त वैयक्तिक महत्ता के हेतु भी माने जाने लगे।

इस व्याख्या-क्रम मे जैन तीर्थकरो के साथ निम्नोक्त चिह्नो का योग हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। कुषाणकालीन जैन प्रतिमाओ मे ये चिह्न नही मिलते। इतिहास साक्ष्य के अनुसार तीर्थकर प्रतिमाओ के साथ देव-देवियो के चित्र जब से प्रारम्भ हुए, उससे पूर्व प्रतीकोपासना का प्रचलन प्रारम्भ हो चुका था, अत प्रतीको की सास्कृतिक परम्परा मौलिक और मगलमय है। जैन पुरातत्त्व की खोज के लिए यह अत्यन्त अनिवार्य है, हम तीर्थंकर-चिह्नो के ज्ञाता बने।

चौबीस चिह्न

नाम चिह्न

(१) रिषभ = वैल
(२) अजित = हाथी
(३) मभव = अश्व
(४) अभिनन्दन = वानर
(५) सुमति = कोक
(६) पद्म प्रभु = पद्मकमल
(७) सुपार्श्व = स्वस्तिक
(८) चन्द्र प्रभु = अर्ध-चन्द्र
(९) सुविधि नाथ = मकर
(१०) शीतल नाथ = श्रीवत्स

(११) श्रेयास नाथ = खड्ग
(१२) वासुपुज्य = महिष
(१३) विमल नाथ = बराह
(१४) अनन्त प्रभु = हस
(१५) धर्मनाथ = वज्र
(१६) शान्ति नाथ = हिरण
(१७) कुन्थ नाथ = अज
(१८) अरनाथ = नद्यावर्त
(१९) मल्लि नाथ = कलश
(२०) मुनि सुव्रत = कछुआ
(२१) नेमिनाथ = उत्पल
(२२) अरिष्टनेमि = शख
(२३) पार्श्व नाथ = सर्प
(२४) महावीर = सिह

(दिगम्बर मत्स्य)

१ स्वस्तिक -- यह परम मागलिक समृद्धिसूचक चिह्न माना गया है। जैन दर्शन के अनुसार कहा जाता है कि स्वस्तिक-चिह्न कर्मवाद का आधार है। इसमे जो परस्पर काटती हुई रेखाएँ दिखायी गयी है, उनसे ध्वनित होता है, आत्मा से कर्मो की अन्विति इसप्रकार है।

२ शख -- यह आध्यात्मिक निर्विकारता का प्रतीक तथा आत्म शान्ति का हेतु माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र मे भं०

महावीर वहुश्रुत साधु को (तत्त्व-ज्ञानी) शख से उपमित करते है। शख कार्यारम्भ का सूचक भी माना जाता है।

३ पूर्ण कलश-घट मगल भावनाओ तथा पूर्णता का प्रतीक माना गया है। तीर्थकर-व्यक्तित्व से वढकर दूसरा कोई पूर्ण नही होता।

४ कमल -- भारतीय सस्कृति मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सामजस्य कमल मे है। इसी विशेषता के कारण यहाँ अनेक विरोधी सस्कृतियाँ एक साथ पल्लवित और पुष्पित हुई है। कमल अनेकता मे एकता का प्रतीक है। यह सहस्रो पखुडियो को एक केन्द्र से जोडे रहता है।

तत्त्वत अनेकान्त दर्शन का सही आधार एव प्रतीक यह कमल ही हो सकता है। कमल की दूसरी विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है वह कीचड मे रहकर भी उससे निर्लिप्त रहता है।

अति प्राचीन युग मे मनुष्य जगलो मे रहता था, अर्थात् पशु-पक्षियो से घिरा रहता था, सम्भव है इसीलिए कुछ पशु-प्रतीको की परम्परा चालू हुई।

५ हस -- यह स्वच्छता का प्रतीक और विमुक्त आकाश-विहारी होता है, इसीलिए आत्माकाश मे विचरनेवाले विशिष्ट साधको को "परम हस" कहा जाता है। हस की एक विशेषता यह भी है कि वह विवेक कला मे कुशल होता है।

६ शेर-सिह -- यह शौर्य-वीरता का प्रतीक पशु है। सम्भवत इसी आधार पर दुर्गा का वाहन शेर माना गया है। भगवान

महावीर कर्म-शत्रुओ के सहार मे पूर्ण समर्थ थे

इसी प्रकार बैल, महिष और मकर के गुण-धर्मो के बारे मे हमे जान लेना है।

तीर्थंकर जप : अन्य आवश्यक जानकारी

मुद्रा वर्णन -- जिन तीर्थंकरो का हम जप या ध्यान करते है, उनकी मुद्रा, वर्णाकृति, चिह्न और आत्म रूप की जानकारी होना परम आवश्यक है। सर्वप्रथम हमे जिनका ध्यान करना है, उनकी आसन-स्थिति पर मन को केन्द्रित करना चाहिए, जैसे -

(१) भगवान ऋषभ - पल्यक मुद्रा (पद्मासन) मे निर्वाण
(२) नेमिनाथ - पल्यकासन मुद्रा मे निर्वाण
(३) वीर भगवान - पल्यकासन मुद्रा मे निर्वाण
(४) शेष २१ तीर्थंकर - कायोत्सर्ग मुद्रा मे निर्वाण

वर्णाकृति परिचय

(१) श्वेत वर्ण - चन्द्र प्रभु, सुविधि प्रभु।
(२) लाल वर्ण - वासु पूज्य पद्म प्रभु।
(३) कृष्ण वर्ण - मुनि सुव्रत, अरिष्ट प्रभु।
(४) नील वर्ण - मल्लि नाथ, पार्श्व प्रभु।
(५) सुवर्ण वर्ण - शेष १६ तीर्थंकर।

निर्वाण-स्थान परिचय

ऋषभ — अष्टापद
महावीर — पावापुरी
नेमिनाथ — गिरनार
वासु-पूज्य — चम्पा
शेष २० तीर्थंकर — समेत शिखर

दीक्षा समय - परिचय

प्रथम प्रहर-श्रेयास, मल्लि नाथ, मुनि सुव्रत प्रभु, नेमिनाथ, पार्श्व प्रभु।

अन्तिम प्रहर - शेष १९ तीर्थंकर

तपस्या-विवरण

(१) सुमति नाथ — साहार

(२) वासु पूज्य — उपवास

(३) मल्लि नाथ — तेले

(४) पार्श्व नाथ — तेले

(५) २० तीर्थंकर — वेले

तीर्थंकरो का साधना क्रम

(१) आसन

(२) अनशन (तपस्या)

(३) मौन

(४) अभिग्रह (प्रतिमा)

(५) कायोत्सर्ग

(६) ध्यान

(७) व्युत्सर्ग

(नोट -- यह क्रम तीर्थंकर बनने के पूर्व होता है।)

इस प्रकार हमने जाना कि नमस्कार महामत्र के वाद जैन शासन मे "तीर्थंकर जप" की परम्परा प्रारम्भ हुई। यह जप परम्परा सर्वग्राह्य और सर्व मान्य वन सकी, इसका श्रेय मात्र तीर्थंकर के आसाम्प्रदायिक व्यक्तित्व को है।

महावीर कर्म-शत्रुओ के संहार मे पूर्ण समर्थ थे

इसी प्रकार बैल, महिष और मकर के गुण-धर्मों के बारे मे हमे जान लेना है।

तीर्थंकर जप : अन्य आवश्यक जानकारी

मुद्रा वर्णन -- जिन तीर्थंकरो का हम जप या ध्यान करते है, उनकी मुद्रा, वर्णाकृति, चिह्न और आत्म रूप की जानकारी होना परम आवश्यक है। सर्वप्रथम हमे जिनका ध्यान करना है, उनकी आसन-स्थिति पर मन को केन्द्रित करना चाहिए; जैसे :-

(१) भगवान ऋषभ - पल्यक मुद्रा (पद्मासन) मे निर्वाण
(२) नेमिनाथ - पल्यकासन मुद्रा मे निर्वाण
(३) वीर भगवान - पल्यकासन मुद्रा मे निर्वाण
(४) शेष २१ तीर्थंकर - कायोत्सर्ग मुद्रा मे निर्वाण

वर्णाकृति परिचय

(१) श्वेत वर्ण - चन्द्र प्रभु, सुविधि प्रभु।
(२) लाल वर्ण - वासु पूज्य पद्म प्रभु।
(३) कृष्ण वर्ण - मुनि सुव्रत, अरिष्ट प्रभु।
(४) नील वर्ण - मल्लि नाथ, पार्श्व प्रभु।
(५) सुवर्ण वर्ण - शेष १६ तीर्थंकर।

निर्वाण-स्थान परिचय

ऋषभ	—	अष्टापद
महावीर	—	पावापुरी
नेमिनाथ	—	गिरनार
वासु-पूज्य	—	चम्पा
शेष २० तीर्थंकर	—	समेत शिखर

दीक्षा समय - परिचय

प्रथम प्रहर-श्रेयास, मल्लि नाथ, मुनि सुव्रत प्रभु, नेमिनाथ, पार्श्व प्रभु।

अन्तिम प्रहर - शेष १९ तीर्थंकर

तपस्या-विवरण

(१) सुमति नाथ — साहार
(२) वासु पूज्य — उपवास
(३) मल्लि नाथ — तेले
(४) पार्श्व नाथ — तेले
(५) २० तीर्थंकर — बेले

तीर्थंकरो का साधना क्रम

(१) आसन
(२) अनशन (तपस्या)
(३) मौन
(४) अभिग्रह (प्रतिमा)
(५) कायोत्सर्ग
(६) ध्यान
(७) व्युत्सर्ग

(नोट -- यह क्रम तीर्थंकर बनने के पूर्व होता है।)

इस प्रकार हमने जाना कि नमस्कार महामत्र के बाद जैन शासन मे " तीर्थंकर जप " की परम्परा प्रारम्भ हुई। यह जप परम्परा सर्वग्राह्य और सर्व मान्य बन सकी, इसका श्रेय मात्र तीर्थंकर के आसाम्प्रदायिक व्यक्तित्व को है।

मन्त्र जप : आवश्यक निर्देश

१ मत्र-जप करते समय मन मे किसी प्रकार की भौतिक-अभिसिद्धि की कामना नही होनी चाहिए। आत्म-साधना का प्रथम चरण है - कामनामय मनोवृत्ति का क्रमश अल्पीकरण

२ मत्र-जप लयपूर्वक होना चाहिए। कभी तेज और कभी मन्द नही। यदि जप करते-करते कभी मन विशेष चचल हो जाए, तो एक बार कुछ समय के लिए निम्नोक्त किसी एक विधि का प्रयोग कर ले -

१ मत्र-ध्वनि को तेज करना।

२ भस्त्रिका जैसा कोई प्राणायाम।

३ किसी अभ्यम्त मत्र-ध्वनि का नाद।

४ सर्वेन्द्रिय गोपन मुद्रा, षण्मुखी मुद्रा।

५ काख मे दोनो मुठ्ठियो को दबाकर सुषुम्णा स्वर चलाना।

३ मत्र साधना जैसे सभी शान्तिकारक अनुष्ठान पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ बैठकर " महामत्र जप अनुष्ठान " अवश्य करलेना चाहिये।

४ समान्यतया माला दाएँ हाथ से पकडकर उसी हाथ की दूसरी अगुली पर रखकर अगूठे के सहारे से माला के मनके घुमाये जाते है। हाथ हृदय के पास रहे, ताकि गुरू स्थान से उठनेवाली अनाहत ध्वनि को यदा कदा सुना जा सके। माला बहुत लम्बी (नाभि से ज्यादा) नहीं होनी चाहिए।

५ कहते है कि माला मे ‘ सुमेरू ’ की व्यवस्था इसलिए की गई है कि १०९ सख्या पर पहुँचते ही मन को वापस मुडने के लिए धक्का लगे। यह वापसी का प्रेरक है। यदि आगे नही चलना है अर्थात् एक ही माला फेरना है, तो सुमेरु को लाँघे नही, एक क्षण के लिए वहाँ रुककर अपना पुनर्निरीक्षण करे कि माला किस प्रकार की मन-स्थिति मे की गयी है।

६ लम्बा मानसिक-जप करते समय बहुत सभव है कि अवचेतन मन मे दबे सस्कार उभर आएँ, किन्तु, इस उखाड-पछाड से घबराना नही है। चालू क्रम को तोडना नही है क्योंकि, इन सस्कारो का उभरना चित्त-शुद्धि के लिए श्रेयस्कर है।

७ प्रारम्भ मे शरीर के स्थूल केन्द्रो पर मत्र-जाप करना है। इसके बाद क्रमश इन केन्द्रो (चक्रो) के भीतरी भाग पर और हमारे स्थूल शरीर के ऊपर बह रहे प्राण शरीर (सूक्ष्म शरीर) पर।

८ यदि सम्भव हो सके, तो प्रतिदिन एक पूरी माला “ नाडी-शोधक प्राणायाम ” (दीर्घ श्वास लेना और छोडना) मे करने का अभ्यास चालू रखे।

९ मत्र-जप करते समय उतावल, उच्चारण की अस्पष्टता और कायिक अस्थिरता-इन तीनो-से अवश्य बचना चाहिए। मत्र-स्त्रष्टा आचार्यों ने इन्ही सब बातो को ध्यान मे रखकर नमस्कार महामत्र के पद, अक्षर, विराम स्थल और उच्छ्वास की सख्याएँ निर्धारित की है -

पद	-	नव
विराम	-	आठ (अन्तिम पक्ति एक साथ)
गुरुवर्ण	-	सात
लघुवर्ण	-	६१
कुलवर्ण	-	६८
मात्रा	-	५८
उच्छ्वास	-	एक आवृत्ति मे तीन

१० मत्र-साधना काल मे निम्नोक्त आठ शुद्धियो का होना आवश्यक माना गया है •-

१. द्रव्य शुद्धि - विशुद्ध भावनापूर्वक मंत्र जपना।

२ क्षेत्र शुद्धि - एकान्त, कोलाहल रहित, मक्खी - मच्छर-शून्य स्थान।

३ समय शुद्धि - प्रात एव सध्या के समय कम-से-कम ४५ मिनट तक जप।

४ आसन शुद्धि - काष्टपट्ट, शिलापट्ट, शुद्ध भूमि तथा समशीतोष्ण स्थान मे किसी एक आसन पर बैठकर माला जपना।

५ विनय शुद्धि - उच्चारण शुद्धि तथा जिस मत्र का जाप किया जा रहा है, उसके प्रति परम प्रीति भाव।

६ मन शुद्धि - दूषित वासनाओ का शोधन करके मानसिक एकाग्रता का अभ्यास करना।

७ वचन शुद्धि - लयपूर्वक शुद्ध उच्चारण से जपना।

८ काय शुद्धि - शौचादि क्रियाओ से निवृत्त होकर सभी प्रकार की शुद्धतापूर्वक मत्र जपना।

११ "णमो" इस पद का स्वतत्र जप करने का विधान है। शब्दार्थ की दृष्टि से यह महान गुरुतापूर्ण शब्द है। इसके तीन अर्थ बनते है -

१ णमो - ध्येय तथा अपने इष्ट के प्रति नम्र-समर्पित होना।
२ नमो - मन शब्द का विपरीत रूप है नमो अर्थात् मनरहित होकर (विकल्प-चेतना की समाप्ति) एकाग्र चित्त से महामत्र को जपना।
३ नमो अर्थात् मौन होकर (अन्तर्मुख) मानस-जप का अभ्यास करना।



-: तनाव मुक्ति के लिए :-

ॐ ह्री श्रीं भगवते पार्श्वनाथाय हर-हर स्वाहा (२७बार)

-: क्रोध/आवेश मुक्ति के लिए :-

ॐ शान्ते प्रशान्ते सर्व क्रोध-पशमनी स्वाहा (२१ बार)

-: भय मुक्ति के लिए :-

णमो अभयदयाण (१० बार)

-: मगलकारी मंत्र :-

ओम् अ सि आ उ सा नम ।

दैनिकचर्या के साथ महामन्त्र जप

श्रावक चर्या के बारे मे आज तक अनेक ग्रन्थ लिखे गये है। उन सभी ग्रन्थो के पठन-पाठन से यह ध्वनित होता है कि श्रावक का प्रत्येक दैनिक क्रम इस महामत्र से प्रारम्भ होना चाहिए।

इन कार्यों की व्यापक सूची इस प्रकार है:-

१ शय्या त्याग करने के तुरन्त बाद महामत्र स्मृति।

२ स्नानादि आवश्यक क्रियाओ की सम्पन्नता के बाद एकान्त मे पूर्ण माला-जप।

३ सामायिक पाठ बोलने से पूर्व और पश्चात् नमस्कार महामन्त्र का जप।

४ प्रवचन, शास्त्राध्ययन तथा किसी भी प्रकार के स्वाध्याय के पूर्व महामत्र का अनुस्मरण।

५ महामत्र से प्रतिक्रमण सूत्र का प्रारम्भ तथा बीच-बीच मे कई बार निर्विघ्न कार्य समाप्ति के लिए महामंत्र का स्मरण।

६ महामंत्र से अनशन का प्रारम्भ।

७ प्रत्येक प्रकार की पूजा, धार्मिक अनुष्ठान तथा आत्मालोचन सम्बन्धी क्रियाओ के साथ अनिवार्य योग।

८ तीनो सध्या-वन्दन के पूर्व पच नमस्कार महामत्र का जाप।

९ रात को शय्या पर जाते समय महामत्र का स्मरण।

जीवन का मार्ग कठिनाइयो का मार्ग है। इस मार्ग की निर्विघ्नता के लिए साधना-पथ का राही कुछ ऐसे प्रभावक सूत्रो का आलम्बन लेता है, जिनके सहारे वह सासारिक कार्यों मे भी सानन्द सफलता वरण कर सके। तत्त्वत अपनी पवित्र, मगलमय और सबल आस्था ही सफलता का मूल हेतु है।

जैन ग्रन्थ 'आचार दिनकर' के अनुसार प्रत्येक लौकिक आचार, सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यों का शुभारम्भ किसी एक पवित्र अनुष्ठान से होना चाहिए और उस अनुष्ठान का प्रारम्भ नमस्कार महामत्र और तीर्थकर स्तुतिपूर्वक होना चाहिए।

१ यात्रा, विदाई तथा स्वागत के समय महामत्र जप।

२ जन्म, मृत्यु तथा विवाह से सम्बन्धित सभी सस्कारो का समापन और शुभारम्भ महामत्र जप से किया जाना चाहिए।

३ स्कूल-प्रवेश तथा अन्य शैक्षणिक कार्यों का प्रारम्भ।

४ मकान-प्रवेश, भवन-निर्माण, दुकान का मुहुर्त्त तथा इस प्रकार के अन्य सभी कार्यों के पूर्व सविधि महामत्र का जप।

५ मानसिक चिन्ता, सकट, तीव्र कलह, कोर्ट-कचहरी और वियोग जैसे प्रसगो पर आत्म-विश्वास बनाये रखने के लिए महामत्र का अनुष्ठानपूर्वक जप करना आवश्यक है।

नोट - इन सभी कार्यों के पूर्व नमस्कार महामत्र, मगल-सूत्र तथा शान्तिनाथ जप - इन तीनो - का एक साथ योग होना विशेष लाभप्रद माना गया है।

जैन साधक का उद्देश्य : आत्म-मुक्ति

जैन परम्परा मे निष्काम साधना का विशेष महत्त्व रहा है। जो लोग किसी कामना से प्रेरित होकर मत्र-तत्र की साधना करते है, वे भ महावीर के शब्दो मे मात्र क्लेश के भागी बनते है और मनोविज्ञान के अनुसार जिसके लिए हम आतुर होते है वह वस्तु हमारे से दूर चली जाती है और प्राप्ति मे विलब होता है; क्योंकि हमारे और उस वस्तु के बीच आसक्ति-पूर्ण विचार-तरगो की एक सघन दीवार खडी हो जाती है, उस दीवार को तोड गिराने का सफल उपाय यही है कि हम निष्काम उपासना के अभ्यासी बने। जो काम्य पदार्थ है, वह स्वत हमारी ओर आकर्षित होगा।

प्राचीन जैन साहित्य के अवगाहन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धो और शाक्तो की तरह जैन श्रमणो मे इस मत्र विद्या के प्रति खुला अनुराग नही था। वे एकमात्र इस विद्या का प्रयोग जैनशासन की विशेष प्रभावना और सुरक्षा के लिए किया करते थे। आचार्य सोमदेव ने एक जगह लिखा है कि जो तीर्थंकर-वीतराग के अतिरिक्त अन्य देवताओ की धर्म बुद्धि से आराधना करते है, वे मिथ्यात्व के दोष से दूषित होते हैं। जिन जैन श्रमणो ने वैयक्तिक महत्वाकाक्षा से प्रेरित होकर मत्र-तत्र का प्रयोग किया, उन्हे सघ की ओर से महान दण्ड का भागी बनना पडा। आचार्य स्थूलिभद्र तक इसके अपवाद न रहे।

इस प्रतिबन्ध का एकमात्र उद्देश्य यही था कि हम मोक्षलक्षी - साधना से हटकर लौकिक अभिसिद्धियो के चक्कर मे न फसे। यद्यपि साधारण मनुष्यो को मत्र विद्या के द्वारा बहुत बडा सहारा मिल सकता है, किन्तु इस क्रम से हमारे आत्मविश्वास की लौ मन्द होते होते सर्वथा बूझ जाती है। ऐसे साधको से जैन शासन तेजस्वी नही रह सकता।

एक समय आया, यतियो ने इस विद्या के प्रचार-प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होने इसी बल पर डगमगाते जैनभवन को टिकाए रखने का सक्रिय प्रयास किया। फलत उस युग मे प्रचलित जैन धर्म के कुछ अवशेष हमारे युग तक पहुँच पाये। उसी प्रकार के धर्म जागरण की आज फिर से अपेक्षा महसूस की जा रही है।

ऐतिहासिक तथ्यो के अनुसार पाचवीं से दसवी शती तक बौद्धो मे कई हजार ग्रथ इस विषय पर लिखे जा चुके थे। कुछ भिक्षुओ ने तत्र विद्या के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था। वे प्रत्येक समस्या का समाधान इसी मे खोजते और पाते थे। यात्रा, शास्त्रार्थ, बीमारी, आर्थिक सकट जैसी हर कठिन परिस्थिति मे देवताओ को आह्वान किया जाता था।

एक बार की बात है, जैनाचार्य श्री अकलक के साथ बौद्ध भिक्षुओ का शास्त्रार्थ हुआ। चर्चा प्रारम्भ हुई। कई दिन बीत गये। किसी की जय-पराजय नही हुई। आचार्य अकलक ने कहा-आज निश्चित मेरी विजय घोषित हो जानी चाहिये थी, किन्तु बाधा क्या है, यह समझ मे नही आ रहा है। आभास ऐसा हो रहा है, परदे की ओट मे कोई ओर ही बोल रहा है, भिक्षु नही है। 'अब शास्त्रार्थ परदा उठने के बाद ही होगा-निर्भीक स्वर मे आचार्य अकलक ने कहा'। परदा हटा, देखा, घडे मे से आवाज आ रही है। आचार्य अकलक ने घडे को फोड कर तारा देवी (बौद्ध शासन सरक्षिका देवी) को बाहर कर दिया। देवी के अदृश्य होते ही भिक्षुओ की पराजय घोषित कर दी गयी। इस प्रकार कई कार्य उस समय देवताओ के द्वारा करवाए जाते थे।

प्राचीन मत्र-जप करने की बौद्ध पद्धति का एक उदाहरण आज भी तिब्बत के लामाओ मे प्रचलित है। वे मत्रपाठ करते-करते थकान का अनुभव करते। कभी कभी थकान इतनी बढ जाती कि शुद्ध उच्चारण करना भी दुरुह हो जाता, इसलिए उन्होने पीतल और जस्ते की फिरकिया तैयार की। एक कागज पर मत्र लिखकर उन पर बाध दिया जाता। फिर, हाथ के झटके से उन्हे घुमाते। एक झटके मे वह जितनी बार घूमती उस मत्र का आवर्तन मान लिया जाता। कहते है कि कही कही तो पवन-चक्कियों पर मत्र लिखे होते और उनसे मत्र-जाप का काम लिया जाता, किन्तु जैनो मे ऐसी कोई पद्धति नही है, क्योंकि यत्रो के द्वारा किया जाने वाला जाप मानव-मन की शान्ति और शक्ति का आधार नही बन सकता।

तत्र साधना के प्रचलित होने के बाद मत्र साधना अधिक समृद्ध और चमत्कार-प्रधान बनी। तत्र के अनुसार जो शब्द हमे विशेष प्रभावित करता है, वह मत्र है। तत्त्वत प्रत्येक मत्र व्यक्तिगत-आस्था, जपकर्ता की मानसिक एकाग्रता तथा पाचो तत्वो की नियामकता का प्रतिनिधित्व करता है।

मत्र-साहित्य मे वर्णित कुछ तथ्य वर्तमान की शोध मे भी स्पष्ट हो गये है। आलाप तथा मत्र जाप से उत्पन्न ध्वनि तरगो मे वर्ण, आकार, गति तथा तापक्रम होता है, जो सब चमत्कार, रोग-चिकित्सा तथा परामन के रहस्यो का स्त्रष्टा है। मत्र सर्वप्रथम स्नायविक प्रणाली को प्रभावित करता है, फिर क्रमश मस्तिष्क के ज्ञान कोष्टकों (जिसका पराशक्ति के द्वारा ही विकास सभव है) और मानव-चेतना के सूक्ष्म भाग को झनझनाता है। जो कुछ भी रहस्य हमारे भीतर से प्रकट हुए है, इन्ही तीनो तत्वो के आहत और जागृत होने के परिणाम है।

मंत्र दीक्षा क्यों ?

जब साधक स्वय के द्वारा इस बात को जान सकता है कि कौन-सा मत्र मेरे लिए उपयोगी एव अनुपयोगी है,फिर किसी दूसरे व्यक्ति के पास जाकर "मत्र दीक्षा" लेने की क्या जरूरत है ?

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस व्यक्ति के प्रति हमारी श्रद्धा होर्ती है, जहा रुचि होती है, वह हमारे चित्त का आकर्षण-केन्द्र बन जाता है। फलत उसका ज्ञान और विज्ञान हमारा मार्ग दर्शन करने लग जाता है, उसकी शक्ति हमारे साथ रहती है।

एक बात यह भी है कि "मत्र दीक्षा" पूर्वक साधना करते समय अतिमानसिक और आधिदैविक जो सकट आते है, वे टल जाते है अथवा उनका गुरु के द्वारा समाधान कर दिया जाता है। इस प्रकार साधक की आस्था और साधक दोनो को बाल-बाल बचा लिया जाता है। इस मत्र साधना मे क्या २ सकट आ सकते है और कौन कहा तक उस शक्ति को झेल सकता है, यह मत्रसिद्ध गुरु को पहले से मालूम होता है।

"गुरु मत्र" को गुप्त रखने का आशय भी तो यही है कि न मालूम बीज रूप मे प्रतिष्ठित अनेक शक्तियो मे से कौन सी शक्ति कब जाग जाए, कब कुपित हो जाए और कौन सा प्रतीकात्मक रूप कब धारण कर ले। इन सबका ज्ञान गुरू को होता है। वे अपात्र को पात्र बना सकते है और पात्र को समर्थपात्र।

यह सच है कि साधना का मार्ग अनुभव का मार्ग है, औरो के इशारो पर चलने का नही, किन्तु मजिल तक पहुँचने के लिए क्रमश अन्तरालवर्ती सीढियो को पार करना जरूरी है। चेतना की पर्याप्त विशुद्धि के बाद आलम्बन स्वत छूट जाते है। प्रयास, अप्रयास बन जाता है। इन सभी दृष्टियो को ध्यान मे रखते हुए हमे सापेक्ष व निरपेक्ष साधना के लिए उद्यत होना है।

जैन परम्परा में तंत्र और मंत्र

प्राचीन जैन इतिहास के अनुसार "आगम-युग" मे मत्र और तत्र का प्रचलन नही था। इन दोनो के स्थान पर 'विद्या' शब्द का प्रयोग होता था। जैन साहित्य मे "विद्या-प्रवादपूर्व" जो मत्र-विद्या का अक्षय भण्डार माना जाता है, उसका कुछ ही भाग हमारे युग तक पहुच पाया है। तथापि यह स्पष्ट है कि जैन परम्परा मे तत्र और मत्र-विद्या का स्वतत्र अस्तित्व रहा है। यह बौद्ध तथा शैवो से अनुदित नही है।

मत्रशास्त्र की दृष्टि से जिसके उच्चारण व पुनरावर्तन से कार्य सिद्ध होता है, वह मत्र है और जिसकी साधना के लिए विशेष कठोर साधन तथा हवन किया जाता है वह विद्या है। एक दूसरी परिभाषा यह भी प्राप्त होती है कि जिसके अधिष्ठाता (नायक-देवता) देव होते है वह मत्र है और जिसके अधिष्ठाता स्त्री-देवता होते हैं, वह विद्या कहलाती है। मत्र शास्त्र मे जिन सोलह विद्या देवियो का उल्लेख है, उनमे अधिकांश देविया वे ही है, जो चोबीस-शासन देविया मानी गयी है। ये ही कुछ नाम बौद्ध शासन सम्मत देवियो की परिगणना मे समाहित हैं।

भ. महावीर के निर्वाण के बाद कुछ समय तक जैन शासन एकान्त आत्म लक्षी रहा। तीर्थंकर, त्यागियो के अतिरिक्त किसी के पूजन और साधन का विधान नही था। ८वी शताब्दी के पूर्व तक निर्मित किसी भी तीर्थंकर-प्रतिमा के साथ देव-देवियो के चित्र नही मिलते। इसके बाद जैन शासन मे शक्ति-पूजा,

चमत्कार प्रदर्शन और कामना पूर्ति के लिए मत्रो का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, ऐसा उल्लेख मिलता है। सच तो यह है कि बौद्ध और शाक्त सम्प्रदाय मे हुए तान्त्रिक चमत्कारो ने जैन सघ को इस दिशा मे सोचने के लिए बाध्य किया। यही समय महर्षि गोरखनाथ के द्वारा प्रवर्तित हठयोग (षडाग) के विकास का था। फलत लोगो का ध्यान विशुद्ध अध्यात्म से हटकर चमत्कारो के प्रति केन्द्रित होने लगा। दिन-प्रतिदिन इस ओर झुकाव बढता ही गया। मानव मन, स्वभाव से चमत्कारो का प्रेमी होता है। उस समय सचाई की परिभाषा थी, जो सबसे बडा चमत्कार प्रदर्शित करता है, जिस सघ मे जितने अधिक लोग देवी-उपासक है और जो मत्र-तत्र के प्रयोगो के द्वारा जनता के कष्टो का निवारण करता है, वही सच्चे परमार्थ का साधक और प्रभावक है। ऐसी स्थिति मे किसी एक सम्प्रदाय के लिए सर्वथा बच निकलना कठिन हो गया। कुछ जैनाचार्य इस क्षेत्र मे आगे आये।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

-: रोगमुक्ति जप :-

सती कुन्थु अरहो, अरिठ्ठनेमी जिणद पासो य
समरताण णिच्च, सव्व रोग पणासेइ

-: मानसिक विकास :-

ओम् का १० मिनिट मद उच्चारण

एकान्त : सब कुछ शान्त

'यदि कुछ पाना है तो पहले एकान्त मे जाओ, फिर उसे बाटने के लिए तुम भीड मे आओ।' जीवन का यह सच हमें विश्वस्त करता है कि भीड के कोलाहल मे हम दो क्षण एकान्त हो पाए। मेले मे अकेले होने का अहसास कर पाए, क्यो कि भीड हमारे इर्द-गिर्द समस्याए पैदा करती है।

एक व्यक्ति मेरे पास आया और उसने अपनी मन स्थिति बताई। उसके भावनात्मक स्तर के उतार-चढाव को देखा तो ऐसा लगा कि विचारो का प्रवाह अतिरिक्त तेज है। समस्याओ से मन बेचैन है। सामूहिक जीवन की विषमताओ से उत्पन्न अवरोधो से स्वास्थ्य भी चरमरा उठा है।

समस्या का एकमात्र समाधान सामने आया -- एकान्त। भीड स्वय मे एक समस्या है। किसी विचारक का कहना है कि अनियन्त्रित भीड के दबाव के कारण शरीरिक प्रतिक्रियाए उत्पन्न होने लगती हैं। इन शारीरिक प्रतिक्रियाओ मे मुख्य है -- अधिवृक्क अर्थात् एड्रीनलीन का अत्यधिक सक्रिय होना। दीर्घकालिक इस सक्रियता के कारण शरीर मे दुर्बलता, काम-वृद्धि, क्रोध मे उग्रता आती है। समस्याए मुह बाए खडी हो जाती हैं।

एक अमेरिकन डॉक्टर का कहना है कि भीड का दुष्प्रभाव जितना मनुष्यो पर होता है, उतना पशुओ पर नही, क्योंकि पशुओ की अन्त स्त्रावी नियत्रण व्यवस्था घरेलू थर्मोस्टेट जैसी है।

एक बार आइलैण्ड द्वीप के हिरणो पर प्रयोग करके देखा गया कि एकान्त मे रहने वाले हिरणो मे और भीड मे रहने वाले हिरणो मे क्या अन्तर होता है? सर्वप्रथम उस मैदान मे पाच हिरणो को छोडा। बढते-बढते वे तीन सौ हो गए। पारस्परिक व्यवहारो मे प्रतिक्रियाए प्रारम्भ हुई। अस्वस्थ रहने लगे। अन्त मे कुछ हिरणो को बन्दूक से मारकर देखा कि बीमारी कहा है? जाच के दौरान यह पाया गया कि फेफडे, प्रजनन-ग्रथि तथा थायरायड आदि सब ठीक है। केवल एड्रीनल ग्रथि मे गडबड है। पाचो मृत हिरणो मे यह ग्रथि अतिरिक्त बढ़ चुकी थी। जिस मासपेशी से अधिक काम लिया जाता है, वह अधिक बढ जाती है। यह एक ऐसी ग्रथि है जो देह-वृद्धि, मन की शाति, सतुलन तथा रोग प्रतिरोध-क्षमता बनाए रखने मे महत्त्वपूर्ण है। कुछ ही दिनो बाद देखा गया कि टापू के हिरण एक-एक करके सब मरते जा रहे है, जबकी वहा घास-पात की कोई कमी नही थी।

यही प्रयोग चूहो पर हुआ। जैसे-जैसे उनके पिजरो मे भीड बढी, पिजरे खून से रगे दिखाई देने लगे। सहकारिता समाप्त हो गई। बलवान निर्बल को काट खाने की सोचने लगा। आखिर सब एक-एक कर मर गए।

भूख से होने वाली व्यथाओ से आज का व्यक्ति अनजान नही है। वह अनजान है तो केवल भीड़ से होने वाली यातनाओ से। भीड मे होते है कुछ ऐसे उत्तेजक तत्त्व जो हमारे तन-मन को चचल, व्याकुल और विक्षिप्त बनाकर रुग्ण बना देते हैं। फलत आस्थाए और व्यवस्थाए, विश्वास और प्रयास सारे भीड़ से प्रभावित होते है। मानव-जीवन मे कितना दु ख-

दर्द दिखाई देता है, उसका दो तिहाई भाग मात्र इस अधी समाज-व्यवस्था के कारण है। यदि व्यक्ति का नेतृत्व इस भीड के हाथो नही होता तो ये गलत अर्थ-शून्य मूल्याकन की दृष्टिया और हल्के प्रदर्शन के तौर-तरीके मनुष्य के व्यक्तित्व की इमारत को गिरा नहीं सकते। वहा होता मनुष्य का सही मूल्याकन जिसे गुणात्मक दृष्टि से देखा जाता।

एकान्त केवल भीड-भाडरहित स्थान को नही कहते, भीड मे विचार पैदा ही नही होते, वे सस्कार भी बनते है। महत्त्वाकाक्षाओ प्रतिस्पर्धाओ और प्रतिक्रियाओं का जन्म एक मात्र भीड मे होता है, किन्तु मन की एकान्तता मे भीड हमारा कोई नुकसान नही करती। चौराहे पर खडा व्यक्ति ओरो के चेहरो को ही देखे, आवश्यक नही । कुछ ऐसे भी लोग होते है, जो वहां भी एक मात्र स्वय को देखते है, स्वय में झाकते है। मन की व्यग्रता में एकात भी अनेकान्त बन जाता है। इसलिए आवश्यक है कि शात एकात वातावरण मे बैठकर कुछ दिनो तक मन के एकान्त का अभ्यास करे। फिर सर्वत्र एकात ही एकात दिखाई देने लगेगा। अनेकान्त पैदा होता है विचारो से, वासनाओ से और विचारो से। जैसे-जैसे विकारो का भार बढता है वैसे-वैसे उस प्रकार के सामान की खोज प्रारम्भ हो जाती है। फिर मन को क्रूर, अशान्त एव स्वार्थपूर्ण विचारो से भरे रहने की आदत बन जाती है। वे सभी अप्रिय प्रसग मन की तह तक चले जाते है। फलत तलगृह के वे सचित सस्कार एक नये प्रकार की वैचारिक भीड उत्पन्न करते है। चेतना की सतह पर अन्तर-द्वन्द्व उभरता है।

एक बार एक अनुभवी व्यक्ति ने सभी लोगो से कहा -- स्वर्ग चाहने वाला अपना हाथ ऊचा कर दे। एक व्यक्ति के सिवाय सबके हाथ ऊपर उठ गये। उस व्यक्ति से हाथ न उठाने का कारण पूछा गया तो वह बोला -- "मैने जान-बूझकर हाथ नही उठाया क्योंकि यहा से सबके चले जाने के बाद पीछे जो भी बचेगा, वह स्वर्ग ही होगा।"

जहा भीड नही होती, वहा स्वर्ग ही होगा। भीड भय पैदा करती है। फिर स्वय की सुरक्षा मे मानसिक द्वन्द्व उभरता है। दुहरापन पैदा होता है, क्योंकि भीड की उपलब्धि है -- चचलता, कालाहल, अशाति जबकि एकात की उपलब्धि है -- मौन, शाति, सहजता।

आकाश और निर्जन का मौन घाटियो और पहाडियो का मौन, कलरव करते पक्षियो और लहरो से उछलते जलाशय का मौन, इन सबसे ध्वनित मौन मात्र अकेलापन ही नही, किन्तु इसके साथ होने वाली सहजता का भाव मौन है। अपनी मस्ती मौन है। निरपेक्ष होकर अपने लिए गुनगुनाते जीना भी मौन है। भगवान् महावीर एकात के समर्थक ही नही, साधक भी थे। उनके उपदेशो मे विविक्त-शयनासन-एकात को तब की सज्ञा दी तप है। जो एकात का सेवन करता है, वह तपस्वी है। उसे सहज इन्द्रिय-सयम, मनोसयम तथा वाक्-सयम का अवसर प्रप्त होता है। शक्तिक्षय के सारे प्रसग सिमटकर सीमित हो जाते है।

विदेशी चिन्तक 'पाल' का कहना है कि अगर आज का प्रत्येक इसान चौबीस मिनट के लिए कही शात एकात वातावरण मे जाकर बिना कुछ सोचे- विचारे, पढे-लिखे बैठ जाए तो इस बढती हुई मानसिक अशाति एव चरित्रहीनता का समाधान स्वत निकल सकता है।

कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्र

किसी मन्त्र की आराधना रग, आकार और धारणा - कल्पना के साथ की जा सकती है। महामन्त्र साधना की कुछ विधिया आपके सामने प्रस्तुत है --

१	णमो अरहन्ताण	-- चमकता श्वेत रग - मस्तक पर
२	णमो सिद्धाण	-- चमकता अरूण रग - भृकुटी पर
३	णमो आयरियाण	-- चमकता पीला रग - कण्ठ पर
४	णमो उवज्झायाण	-- चमकता नीला रग - हृदय पर
५	णमो लोए सव्व साहूण	-- चमकता श्याम रग -तैजस केन्द्र नाभिपर

(२) णमो अरहन्ताण — कानो मे अर्हत् की ध्वनि सुनना

णमो सिद्धाण — दिव्य ज्योति आखो के सामने देखना

णमो आयरिंयाण — नाक मे दिव्य सुरभि का अनुभव

णमो उवज्झायाण — जीभ से ज्ञान का रसास्वादन करना

णमो लोए सव्व साहूण-स्पर्श-सुख से भिन्न सुख का शरीर से अनुभव।

(३) ओम् नमो ओम् अर्हं अ सि आ उ सा नम

हृदय मे इस मन्त्र का १०८ जप करने से उपवास का फल होता है। कहते है कि इस मन्त्र से यदि पानी को मन्त्रित करके प्रयोग किया जाए तो दावानल तक शात हो सकता है।

(४) दर्शन केन्द्र पर महामन्त्र जप--

चार पखुडी वाला चक्र बनाये जिसके बीच मे अरिहत ऊपर सिद्ध, दाये आचार्य, वाये उपाध्याय, नीचे - साधु।

(५) "अ सि आ उ सा" - प्रतिदिन पाच माला का जप अति उत्तम है।

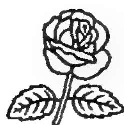
(६) "ॐ श्री ह्री अर्हं नम" - यह मन्त्र कल्याणकारी है।

(७) "ॐ ह्री अर्हं णमो अरहताण ह्री नम" - इस मन्त्र को केवली विद्या मन्त्र कहा जाता है।

(८) "ॐ अरहत सिद्ध सयोगी केवली स्वाहा" - यह पच परमेष्ठी मन्त्र है। इसका २०० बार जप करनेसे एक उपवास के फल का लाभ मिलता है। १२५००० जप करने से विद्या प्राप्त होती है।

(९) ॐ ह्रीः णमो अरहताण, ॐ ह्री णमो सिद्धाण,
ॐ ह्री णमो आयरियाण, ॐ ह्री णमो उवज्झायाण,
ॐ ह्री णमो लोए सव्व साहूण

इस मन्त्र का परमेष्ठी मुद्रा मे जप किया जाये तो चोरो का भय दूर, दुष्ट मनुष्यो से तथा विपत्तियो से मुक्ति मिलती है।



नमस्कार महामंत्र : प्रभावक कथाएँ

जैन कथा-साहित्य अपनी विशालता के लिए जितना प्रख्यात है, उतना ही अपनी मौलिकता के लिए प्रसिद्ध है। इस दिशा मे जैनाचार्यों ने विशेष ध्यान दिया। भाँति-भाँति के कथा-कोष तैयार किए।

उन सभी कथा-कोषो की भाषा सस्कृत और प्राकृत रही है। आज उन सभी कथा-कोषो का हिन्दी मे अनुवाद आवश्यक समझा जा रहा है। कुछ कथाओ का अनुवाद हिन्दी मे हुआ भी है। उन अनुवादित कथाओ मे से "नमस्कार महामन्त्र" से सम्बन्धित अनेक आख्यान है। कुछ चमत्कारपूर्ण अतिशय प्रभावक घटना-प्रसग आपके सामने प्रस्तुत है ;-

तेइसवे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के "जीवन चरित्र" मे एक नाग और नागिन के जोडे की घटना प्राप्त होती है। बनारस नगर के बाहर गगा के किनारे एक तापस पचाग्नि-तप कर रहा था। सयोगवश घूमते हुए राजकुमार पार्श्व भी वहाॅ पहुॅच गए। एकाएक उनकी ज्ञानदृष्टि धू-धूकर जल रहे उस लक्कड पर पहुॅची, जिसमे नागयुगल बुरी तरह से झुलस रहा था। राजकुमार पार्श्व ने इस हिसात्मक अज्ञान पोषित साधना को अविलम्ब त्याग देने की सलाह दी, किन्तु, तापस ने कोई ध्यान नही दिया, कुमार का आदेश पाकर एक राजपुरुष आगे बढा उसने तापस के पाखण्ड का पर्दाफाश करने हूतु जलते हुए ठूठ (लकडी) को बाहर खीच निकाला, जिसमे से तडफता हुआ एक नाग युगल निकला। यह देखकर उपस्थित सभी जन-समुदाय ने तापस की बहुत-बहुत भर्त्सना की।

किन्तु, राजपुत्र श्रीपार्श्व का ध्यान नाग-युगल की ओर आकर्षित था। उसे महामन्त्र सुनाया, दोनो ने परमशान्ति का अनुभव किया। फलत दोनो मरकर भवनपति देवो के अधिपति धरणेन्द्र और पद्मावती बने। भगवान पार्श्व प्रभु की असीम अनुकम्पा से अनुगृहीत देव युगल ने जिन शासन की सेवाओ के लिए स्वय को पूर्णत समर्पित कर दिया। उस नाग युगल ने विशेषत भगवान पार्श्वनाथ और उनके भक्तो का सरक्षण करना अपने जीवन का ध्येय बनाया। इसी ध्येय का शुभ परिणाम है कि भगवान पार्श्वनाथ का जाप भौतिक अभिसिद्धि के क्षेत्र मे भी आवश्यक सुफल लाता है।



● एक बार की बात है, कुछ ब्राह्मण यज्ञ वाटक (प्रदेश) मे हवन कर्म की सम्पन्नता मे जुटे हुए थे। सबका ध्यान यज्ञवेदी पर था। इस बीच अचानक एक कुत्ते ने हवन-सामग्री को जूठा कर दिया। यह देखकर ब्राह्मण पूजारियो के धैर्य का बॉध टूट गया। सब के सब उस अनजान पशु पर उछल पडे। उसे बुरी तरह से पीटा। उसके प्राण-पखेरू उडने ही वाले थे कि सयोणवश राजपुत्र जीवध कुमार उस भीड मे पहुच गए। उन्होने उस जीवित लाश को महामन्त्र का स्मरण कराया और प्रतिबोध के स्वर मे कहा -- तुम किसी जीवात्मा पर द्वेष मत करना, क्योंकि, सब अपने ही कृत कर्मों का फल भोगते है। इस सद्बोध एव महामन्त्र के प्रभाव से वह देव-निकाय मे उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसने ज्ञान-बल से अपने परम उपकारी को देखा। तुरन्त नीचे आया और इस निष्काम करुणा की

भूरि-भूरि प्रशसा के साथ कुछ ज्ञान और कुछ ऐश्वर्य प्रधान उपहार देकर लौट गया। इस कथानक से यह स्पष्ट होता है कि इस महामन्त्र के प्रभाव से मानव तो क्या दानव और पशु-पक्षी भी परम पद पाने के अधिकारी बन जाते है।



● घटना कालचक्र के साथ बदलते हुए चैतन्य की है। मुक्ति-लाभ के पूर्व प्रत्येक प्राणी को विविध योनियो मे पडाव करना होता है। जैसे कभी नरक-तिर्थच मे और कभी मानव-देव मे। महासाध्वी सती सीता के जीव को भी इसी भॉति भव भ्रमण करना पडा।

एक बार हथिनी के रूप मे सीता के जीव ने इस रगमच पर अभिनय किया। इस अभिनय के दौरान वह घने जगलो मे बहुत दूर चली गयी; मार्ग मे कीचड बहुत था। पैर फॅस गये। लाखो प्रयत्नो के बावजूद वह स्वय को निकाल न सकी। इस बीच पुण्य योग से सुरग नामक विद्याघर पहुॅचा। उसने मरणासन्न स्थिति को देखकर महामत्र सुनाया। उस मत्र के प्रभाव से वह मरकर नन्दवती, श्रेष्ठी कन्या बनी। उसके बाद वह क्रमश सीता सन्नारी बनी।

कहा जाता है कि आठवे सुभूम चक्रवर्ती जिह्वा-लोलुपता के कारण भयकर सकट मे पड गये। एक दिन की बात है महाराज भोजन के लिए बैठे थे। पाचक खीर लाया (रसोइया) खीर इतनी अधिक गर्म थी कि महाराज का मुॅह जल गया। इस प्रसग पर उत्तेजित होना स्वाभाविक ही था। चक्रवर्ती ने उस

दुर्व्यवहार के प्रतिशोध हेतु खीर से लबालब भरे उस बर्तन को पाचक के सिर पर उडेल दिया। फलत वह पाचक उस तीव्र जलन के कारण मरकर लवण समुद्र मे व्यतर देव बना। देवता ने उत्पन्न होते ही ज्ञान दृष्टि से अपने हत्यारे सम्राट को देखा। देखते ही वह चक्रवर्ती पर आग-आग हो गया। देव के मन मे प्रतिस्पर्धा की ज्वाला भभक उठी। उसी क्षण वह तापस का रूप धारण करके मधुर फल की भेट लिए दरबार मे पहुँचा। महाराज ने उपहार मे प्राप्त उस सुस्वादु फल का उपभोग किया। फलकी मधुरता ने महाराज के मन को मुग्ध बना दिया। क्या ऐसे मधुर फल मुझे प्रतिदिन उपहार मे मिल सकते है राजा ने आतुरता-पूर्वक पूछा ? हाँ, मेरे टापू मे यदि आप पधारने का कष्ट करे, तो प्रतिदिन मिल सकते है। - तापस ने कहा।

महाराज लोभ मे फँस गये। दूसरे दिन अवसर देखकर महाराज स्वय वहाँ पहुँचे। तापस ने कहा -- "मुझे पहचानते हो या नही ? मै वही तेरे पाचक का जीव हूँ। अब खैरियत नही है। मैने फल का प्रलोभन देकर मात्र यहाँ बदला लेने के लिए बुलाया। देव की इस भीषण वाणी को सुनकर राजा सिहर उठा। धडकन तेज हो गयी। राजा ने सोचा -- हाय! कहाँ फँस गया। अब मेरे लिए महामन्त्र ही त्राण और शरण है यान और आलम्बन है। चक्रवर्ती ने मृत्यु की भयानकता से ऊपर उठकर परमबन्धु चिन्तामणि महामत्र का निष्ठापूर्वक स्मरण प्रारम्भ कर दिया।

महामन्त्र की अचिन्त्य ताकत के सामने देव हिम्मत हीन हो गया। वह दुविधा मे पड़ गया इस जप के चलते मै कैसे बदला ले सकूगा ? देव चिन्तन की गहराई मे उतरा और एक तरकीब

सोच निकाली। व्यतर ने राजा से कहा--ऐ नीच पामर! यदि वास्तव मे तुझे जीवन चाहिए, तो नमस्कार महामन्त्र को एक बार लिखकर अपने बाएँ पैर के अगूठे से उसे मिटा दे। 'मरता क्या नही करता' इस उक्ति के अनुसार राजा ने यह शर्त स्वीकार कर ली। विनाशकाल मे विपरीत बुद्धि का योग अनिवार्य होता है। राजा ने जिस नमस्कार महामन्त्र को सकट-मोचक परमबन्धु माना था, आज उसी महामन्त्र की अवज्ञा कर रहा है। राजा ने महामन्त्र को जैसे ही अगूठे से दबाया वैसे ही व्यतर देव ने राजा को मारकर समुद्र के बीच फेक दिया।

अब तक जिन देव शक्तियो ने उसे बचाए रखा था, वे सब इस महामन्त्र से आकर्षित थी। जब यह स्पष्ट हो गया कि यह जिन शासन का सेवक नही, अपितु उसकी आशातना--अविनय करने वाला तथा-कथित उपासक है, तब किसी ने उसे श्रावक जानकर सहारा नही दिया। यह है नमस्कार महामन्त्र मे छुपी दिव्यशक्ति का एक उदाहरण।



● घटना उस समय की है जब जैन शासको का बिहार मे प्रभुत्व था। उन्ही दिनो अजन नामक एक चोर ने बिहार के कई छोटे-बडे गॉवो को अपने स्तैन्यकार्य से आतकित कर रखा था। वह चौर कर्म के साथ-साथ कामान्धता का जीवन भी जीता था। सच तो यह है कि उसने तीव्र कामुकता की सम्पूर्ति के लिए चौर्य वृत्ति का सहारा ले रखा था।

वह बुरी तरह वेश्या के प्रणय-पाश मे बध चुका था। एक दिन वेश्या ने उस से सम्राट श्रेणिक की महारानी के हार की याचना की। जिस वेश्या के लिए वह अपनी सर्वोत्तम सम्पत्ति कोमल काया भी समर्पित कर चुका था, उसके लिए यह कोई कठिन कार्य नही था। वह उसी रात महल मे पहुँचने की योजना मे जुट गया। जैसे-तैसे वह हार लेकर भागने मे सफल हो गया। इस प्रकार किसी व्यक्ति को भागते हुए देखकर पुलिस ने पीछा किया। अजन चोर ने सोचा अब जीवन सकट मे है। इस कष्ट कानन से बच निकलना सर्वथा असम्भव है। वह भय से कातर बनी दोनो ऑखो से किसी शरण स्थान की खोज करने लगा। उसने देखा, इस घने जगल मे वारिषेण मुनि 'नमस्कार महामत्र' से 'आकाशगामिनी विद्या' सिद्ध कर रहे है, क्यो न मै वही चला जाऊँ? चोर ने वारिषेण को निकटता से देखा और समझ गया यह क्या मन्त्र साधना करेगा, जो मन्त्र शक्ति के प्रति अब भी सन्दिग्ध है। मत्र साधना की सामग्री थी -- १०८ रस्सी वाला एक छीका, नीचे प्रज्वलित अग्नि कुड और उसके चारो ओर ३२ प्रकार के सभी शस्त्र।

चोर ने सोचा मरना अवश्यम्भावी है। मोत आगे से नही पीछे से दौडी आ रही है। अच्छा है इस विद्या का साधन करके मै आकाश चारी बन जाऊँ। चोर के आग्रह पर वारिषेण छीके से नीचे उतर गये। चोर चढ गया। विधिक्रम के अनुसार प्रत्येक माला के बाद छीके की एक-एक रस्सी काट दी जाती। क्रम आगे बढता गया। अन्तिम रस्सी के टूटते ही वह नीचे नही गिरकरआकाश मे उडने लगा। इस चमत्कार के साथ ही उसका मानस बदल गया। कुछ ही दिनो के बाद वह जिन-भक्ति मे लीन होकर परम विरागी मुनि बन गया।



● जैन इतिहास के पाठक इस बात को भली-भॉति जानते है कि मालव नरेश महाराज चण्ड प्रद्योतन जघन्यतम कामुकता के कीट थे। वे अपने मन को सुरा और सुन्दरी की मोहकता से कभी भर नही सके। उनके जीवन काल मे हुए अधिकाश युद्धो मे रक्त इसी वासना चण्डी के खप्पर भरने के लिए बहाया गया था। शाही नशे मे मदहोश उस कामी नरेश ने सन्मुख आयी किस ललना को अपने काम-बाण से नही बीधा?

इसी सन्दर्भ मे एक बार महाराज उदयन की सम्राज्ञी प्रभावती को चाहा। अचानक चण्डप्रद्योत के सैनिको द्वारा नगरी घेर ली गयी। महाराज उदयन उन दिनो बाहर थे। अत नागरिको मे भीषण भय व्याप्त हो गया। महारानी प्रभावती ने उन सकट की घडियो मे अपने शील की रक्षा के लिए महामन्त्र का स्परण प्रारम्भ कर दिया। आकाश पथ से जाते हुए कुछ देव विमान प्रभावती के मन्त्र जाप के प्रभाव से वहा रूके और उस सती साध्वी को रक्षा के लिए नीचे उतरे। सेना को उज्जयनी पहुॅचा दिया गया।

सती का सकट टल गया, यह जानकर वह देवता चण्ड प्रद्योतन का रूप बनाकर परीक्षार्थ आया और कहा महारानी! मेरी बॉहो मे आओ, मैने तुम्हारे स्वामी उदयन को बदी बना लिया है।"

यह विरूप वाणी सुनकर महारानी और गम्भीर हो गयी। तेज स्वर मे बोली, महाराज! मेरी रक्षा करो। देव, गुरू और धर्म से बढकर इस धरती पर कोई ताकत नही है। अब देवता परिवर्तित रूप मे सामने खडा था। मै तुम्हारी शासन भक्ति

देखने आया हूँ। धन्य है, ऐसी धर्म, श्रद्धा और तुम्हारी निर्विकारता भरी दृष्टि'। देव इस प्रकार कृतज्ञता ज्ञापन करता हुआ स्वस्थान चला गया। यह है नमस्कार महामत्र का दिव्य-प्रभाव।



● एक था बुनकर, जो अपनी दोनो पत्नियो को लेकर एक दिन उद्यान क्रीडा के लिए गया। उसी रास्ते से एक जैन मुनि पदव्रज्या करते हुए आ रहे थे। उन्होंने अपने ज्ञान-बल से जुलाहे की आयु को अत्यल्प जानकर कहा -- बुनकर। देह की नश्वरता को समझो इन राग-रगो के छूटने मे केवल अब दस ही मिनट अवशेष रह गये है, मेरी बात पर गौर करो, जुलाहा आश्चर्य और भीति के स्वर मे बोला -- "मुने। अब क्या होगा इस पापी का ? जल्दी से मुझे प्रायश्चित देकर हल्का करे, मन पर जमे मैल को अपने करूणा जल से अविलम्ब धो डाले।"

किसी ने सच कहा है कि दुनिया मे सबसे बडा उपदेश "मृत्यु का स्मरण" है। मुनि ने अत्यासन्न मृत्यु को जानकर उसे नमस्कार महामन्त्र सुनाया और अपने साथ मन्त्रोच्चारण करने का सुझाव दिया। जुलाहा ने मुश्किल से तीन बार नमस्कार महामन्त्र बोला कि मृत्यु ने अपने मुख-विवर मे समा लिया।

दोनो पत्नियो को इस घटना की पूर्व जानकारी नही दी गयी। अत वे दोनो अपने पति की मृत्यु का कारण उस मुनि को समझकर दरबार मे फरियाद लेकर पहुँची। राजा ने अपनी न्यायप्रियता का परिचय दिया और तुरन्त इस प्रसग की न्यायिक जाँच का आदेश दिया। पुलिस घटना-स्थल पर पहुँची। जगल

मे एकाकी मुनि को देखकर बेडियॉ पहना दी। मुनि का मानस सधा हुआ था। वे मानते थे कि अहिसा के क्षेत्र मे अप्रतिकार भी एक प्रतिकार होता है। दरबार मे उन्हें उपस्थित किया गया। इसी अवधि मे वह देव अपने उपकारी की स्मृति करता हुआ वहाँ पहुचा। देव मुनि को बधन मुक्त करके कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए चला गया।

यह हुआ आन्तरिक आस्था से महामत्र जपने का चमत्कार।



● घटना तेरापन्थ के सप्तमाचार्य श्री डालगणि के शासन काल की है। गुलाब खॉ नामक एक मुस्लिम भाई था, जिसका जैन लोगो के साथ विशेष उठना-बैठना था। कलकत्ता के करीब-करीब सभी तेरापन्थ समाज की बडी गद्दियों से उसका सम्पर्क था।

एक दिन काले नाग ने उसे डस दिया। चारो ओर हलचल हो गई। मत्र-तत्रज्ञ लोगो को बुलाने की व्यवस्थाऍ की जाने लगी। नाग की भयकरता से बचने की आशा लगभग समाप्त हो चुकी थी। यह सब जानते हुए गुलाब खॉ ने कहा "आज तक जिस महामन्त्र को मैने श्रद्धापूर्वक जपा है, क्यो न मै उसी मन्त्र की शरण मे चला जाऊँ! मुझे २० मिनट का समय दिया। मै मालाजप मे बैठा। प्रत्येक आवृत्ति के बाद मोटे सूत (मोती की भाँति) पर १०८ गॉठ लगाकर एक ताती तैयार करके पैर पर बॉध ली। उपस्थित परिवार के लोगो से कहा, "अब मुझे इस तॉती के प्रभाव दर्शन के लिए कुछ समय दिया जाय।"

बीस मिनट तक सोकर महामन्त्र का ध्यान किया। फलत सारा शरीर निर्विष हो गया। भावनाओ के उत्कर्ष का यह एक अजीब उदाहरण या स्थूल शरीर से बाहर विचरण करने की दिशा मे एक सफल प्रयास है।



● ऐसी ही एक दूसरी घटना है। तेरापन्थ की एक अग्रणी साध्वी अपनी सहयोगिनी चार सतियो के साथ एक किसान के झोपडे मे ठहरी। चिलचिलाती धूप, पसीने से लथपथ शरीर, चारो ओर घना जगल। साध्वियो को झोपडे मे रात्रि-विश्राम करना था। सूर्यास्त के साथ धरती की उष्मा बाहर निकल आयी। वातावरण और अधिक गर्म हो गया। जाट ने खेत से घर लौटते समय साध्वियो से कहा, "मै पहले से आपको सावधान किये देता हूँ। इस सध्या-कालीन उष्मा के कारण कुछ जहरीले जीव-जन्तु यहाँ निकल आया करते है। इसी कारण, मै स्वय यहाँ रात्रि-विश्राम नही करता। आप अपना प्रबन्ध कर ले। अगर कुछ हो गया, तो मै उसका जिम्मेदार नही हू।

अस्तु हुआ वही जो सम्भावना थी। अनेक छोटे-बडे जीवो से झोपडी का आँगन भर गया। एक सर्प ऊपर से नीचे की ओर उतर रहा था, तो एक सामान पर चढने को आतुर था और कुछ बिच्छू और सर्प जहाँ साध्वियाँ प्रतिक्रमण कर रही थी, उस ओर तेजी से बढ रहे थे।

अग्रणी साध्वी ने सब साध्वियों की दृढता जॉच करते हुए कहा -- "यदि तुम्हारे मन मे तनिक भी घबराहट हो, तो हम सामनेवाले वृक्ष के नीचे जाकर प्रतिक्रमण कर ले, अन्यथा मेरा ख्याल यह है कि हम पॉचो मण्डलाकार बैठकर पॉचो रजोहरणो का एक घेरा बना ले और महामत्र के पॉचो पदो से क्रमश स्थान को मत्रित कर ले। सबकी सहमति के साथ यह कार्य प्रारम्भ हुआ। जो सर्प सामने की ओर से बढ रहा था, वह भरसक प्रयास करने के बाद भी साध्वियो के चारो ओर बिछे रजोहरणो को पार नही कर सका। आखिर निराश होकर झोंपडी से बाहर चला गया। इसी प्रकार उस झोंपडे मे स्थित सभी जीव-जन्तु महामत्र के प्रभाव से शान्त होकर चले गये।



● सेठ का इकलौता पुत्र शिवकुमार, अपनी यार-दोस्ती के कारण बदनाम हो चुका था और सेठ बुढापे के दिनों को पार करके मौत के मुँह मे समानेवाला था। एक दिन की बात है। सेठ ने मृत्यु को अति निकट जानकर प्यारे पुत्र शिवकुमार से कहा -- "बैटे! मेरी अन्तिम सीख पर ध्यान देना। मै एक घडी के बाद अब इस दुनिया मे नही होऊँगा।" शिवकुंमार को किसी आध्यात्मिक शिक्षा की आवश्यकता नही थी। वह स्वय को सबसे अधिक समझदार मानता था। पिता महामत्र के अन्तिम उच्चारण के साथ अपनी सीख देकर सदा के लिए विदा हो गया। वह चाहता था कि मेरा पुत्र महामत्र स्मरण के रूप मे जिन-भक्ति और जिन-शासन की प्रभावना करता रहे।

शिवकुमार किसी येग्य मार्ग-दर्शन के अभाव मे भटक गया। सम्पत्ति यार-दोस्तो मे बँट गयी। अब घर मे खाने के लिए एक मुट्ठी धान भी नही बचा। भूख की पीडा सब पीडाओ से अधिक भयकर होती है। इस दारुण वेदना से कायल होकर शिवकुमार अँधेरी रात मे अनजानी राह पर चल पडा। उसने सोचा -- यदि कोई सहारा मिल गया तो ठीक, वरना इस जीवन-खेल को ही समाप्त कर देना है।

पैर, सुनसान अँधेरी गलियो को पार करके जैसे-तैसे शहर के बाहर पहुँचे। सृष्टिक्रम के अनुसार हर वियोग की रजनी मे सयोग के स्वप्न पलते है और कभी वे फलते भी है। शिवकुमार की भेट एक योगी बाबा से हुई। वह योगी स्वार्थ-योग का साधक था। उसने अपने सभी स्वप्नो की साकारता के लिए उसे उचित पात्र समझा और अपने निकट बुलाकर उसके दु ख-दर्द की पूरी कहानी सुनी। बेटा! मेरे रहते अब तुम्हे कोई कष्ट नही होगा। अब तेरे द ख के दिन बीत चुके है, ऐसा योगी ने कहा। बाबा! पहले कुछ खाने के लिये दिया जाए, शिवकुमार ने कहा। योगी ने मुट्ठी भर चने देकर उसे आश्वस्त करके आगे बढने के लिये कहा। योगी चाहता था कि "स्वर्ण पुरुष विद्या" सिद्ध करूँ, जिसके लिये आवश्यक है एक बत्तीस लक्षण सम्पन्न हृष्ट-पुष्ट एकहरा व्यक्तित्व, अवसर का लाभ उठाने हेतु योगी उस असहाय अनजान शिवकुमार को लेकर श्मशान मे पहुँचा। प्रलोभन की भाषा मे योगी ने कहा, शिवकुमार! मै एक ऐसी मत्र-साधना करूगा, जिससे तेरी आर्थिक दरिद्रता सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगी, किन्तु, तुम हिम्मत से काम लेना।

भविष्य के रगीन स्वप्नो मे कौन नही उलझता। शिवकुमार प्रमुदित मन से भावी-योजना मे जुट गया। योगी ने कहा, "तुम्हे श्मशान मे पडे किसी शव के पैरो के सामने बैठना है। शव के हाथ मे तलवार बॉध दी जायगी। सम्भव है वह शव 'रौद्र मत्र' के प्रभाव से उठने और नाचने भी लगे, किन्तु, तुम घबराना मत। ऐसा होने से ही हमारा प्रयास सफल होगा।" आगे की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सिर की ओर बैठे योगी के मुँह से जोरो से रौद्र जाप प्रारम्भ हुआ। कुछ ही क्षणो के बाद उस चमचमाती तलवार को लिए शव उठा, मानो कि शिवकुमार की गर्दन अभी-अभी उडा दी जायगी। यह भयावह रूप देखकर शिवकुमार की धडकन तेज हो गयी। उसने सोचा -- हाय! अब क्या करूँ? मै तो बुरी तरह से योगी के फन्दे मे फॅस गया। अचानक उसके स्मृति पटल पर पिता की उस सीख की याद उतर आयी। वह मन-ही-मन नमस्कार महामत्र को एकमात्र सहायक समझकर जपने लगा। उसने देखा कि रोद्र मत्र का प्रभाव 'नमस्कार महामत्र' के सामने क्षीण होता जा रहा है। जिस शव का मुख शिवकुमार की ओर था, वह योगी की ओर मुड गया और तलवार ने योगी की गर्दन को काटकर नीचे गिरा दिया।

कैसी विचित्र लीला! जो किसी अन्य को "स्वर्ण पुरुष" बनानेवाला था, अब वह स्वय "स्वर्ण पुरुष" बन गया। इस चौकानेवाली घटना को देख कर शिवकुमार पितृ-भक्ति से द्रवित हो गया। उसने वही से पूज्य पिताश्री तथा नमस्कार महामत्र का अभिवादन किया। और सदा के लिए जिन शासन का भक्त हो गया।

कितना आश्चर्य! इस आर्थिक सकट के समय भी शिवकुमार ने अपना बौद्धिक सन्तुलन नही खोया, उस "स्वर्ण पुरुष" (स्वर्ण पिण्ड) को वही श्मशान मे गाडकर राजा को सूचित कर दिया। न्यायप्रिय राजा ने उसकी सच्चाई से प्रभावित होकर वह "स्वर्ण पुरुष" उसे भेट मे दिया। इस घटना से यह स्पष्ट है कि विश्व मे कोई ऐसी ताकत नही, जो इस महामत्र के आगे सिर ऊँचा उठा सके।



• बिहार प्रान्त राहजनी, लूट-खसोट तथा डकैती-रूप चौर्यकर्म के लिए हजारो वर्षें से प्रसिद्ध रहा है। यह बात उस समय की है, जब राजगीर मे सम्राट् श्रेणिक का शासन था। उसी क्षेत्र के आस-पास एक छोटा-सा कस्बा जिसका नाम था--तरगिणि। उस गाँव मे एक सेठ रहता था, जो अपनी अन्तिम साँसे गिन रहा था। उसने मरते समय रात्रि को अपने पुत्र को पास बुलाकर कहा -- बेटे! मेरी अन्तिम सीख पर गौर करना। यथासम्भव प्रतिदिन बिस्तर त्याग के साथ महामत्र जाप और एक अभिग्रह (सकल्प) करना।"

पुत्र ने तथास्तु कहा कि पिता ने अन्तिम साँस छोड दी। इस धार्मिक वार्तालाप के समय एक चोर नीचे खडा था। उसने यह सब सुना। उसने सोचा कि जो पिता मरते समय अपने मन की कोई बात अपनी प्यारी सन्तान से कहता है, वह जरूर रहस्यपूर्ण एव बहुत ही सुखद होनी चाहिए। इस विश्वास के आधार पर उस चोर ने वह मन्त्र लिखकर अपने साथ ले लिया। वह प्रतिदिन उसे जपता और एक दैनिक सकल्प (अभिग्रह) करता

था। उसके मुख्य सकल्प थे -- मुझे अमावस्या को चोरी नही करना है, वर्षा के दिन चोरी नही करना है। जिस दिन नमस्कार मन्त्र का पाठ भूल जाऊँ, उस दिन चोरी करने नही जाऊँगा। इस प्रकार के सकल्पो के कारण प्रतिमास ५ - ७ दिन उसे अपने कार्य से विरत होना पडता। चोर की पत्नी ने सोचा - - इस प्रकार हामारा सासारिक जीवन कैसे बीतेगा। लगता है ये किसी बहकावे में आ गये है न मालूम कब ये इस धन्धे से उदासीन हो जाए। उसने सोचा क्यो न इस मन्त्र-लिखित पन्ने को ही समाप्त कर दिया जाए, फिर न रहेगा बॉस और न बजेगी बाँसुरी। वह चुपके से अपने पति के पूजाघर से उस पन्ने को उठा लायी और कुएँ में गिरा देने की भावना से चल पडी। पर सयोग की बात, पन्ने को गिराते समय एक आवाज आयी कि इस पन्ने को अमुक श्मशान मे पडे स्त्री के शव पर गिरा दिया जाए। उसने आवाज के अनुसार अपने गतिक्रम को बदला और उस लाश पर पन्ना गिरा दिया। फलत मत्राकर्षित देव शक्ति के प्रभाव से वह लाश जीवित स्त्री मे बदल गयी। उसके रुके प्राणो का प्रवाह फिर से चालू हो गया। इस चमत्कार को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। सबने चाहा कि यह पन्ना हमे मिले, अब वह चोर-पत्नी भी झगडने लगी, जो उस पन्ने को समाप्त करना चाह रही थी।

इधर "सिद्ध चोर" अपने घर पहुँचा। उसे पत्नी - कृत्य की सूचना मिली, तो वह स्वय श्मशान मे पहुँचा और सबको यह कहकर शान्त कर दिया कि वह मत्र मुझे कठस्थ है, आवश्यकतानुसार मै ऐसा "लिखित मत्र" और तैयार कर सकता हूँ। वातावरण शान्त हुआ, सभी को प्रसन्नता हुई।

पाठक बन्धुओ! यही है वह चोर, जिसकी मत्र-भक्ति की सर्वज्ञो के द्वारा बार-बार प्रशसा की गयी। उसने मुनियो के सामने खडे-खडे केवली पद पा लिया, उसके पास केवल इसी महामत्र की शक्ति और साधना थी।



● पूर्वोक्त लगभग सभी घटनाएँ जैन कथा कोष मे उल्लिखित है। इनमे से कुछ दिगम्बर परम्परा मे ज्यादा प्रचलित है और कुछ श्वेताम्बर परम्परा मे। कुछ कथाएँ परम्परा और श्रुति के आधार पर लिखी गयी है। हो सकता है कि किसी श्रोता ने दूसरे प्रकार से सुनी हो, किन्तु, मैंने अपनी स्मृति का सहारा लिया है। यदि इसमे कोई कमी रही हो, तो पाठक उन अशो का सशोधन करके समझ ले।



श्रीपाल - मैनासुन्दरी

अग देश की राजनगरी चपापुरी थी और उस देश का शासक राजा सिहरथ। सिहरथ के मत्री का नाम मतिसागर था। वह राजा का दाहिना हाथ था। राजा सिहरथ की रानी का नाम कमलप्रभा था। कमलप्रभा कोकण के राजा वसुपाल की छोटी बहन थी। राजा वसुपाल कोकण देश की राजधानी थानापुरी मे राज्य करता था।

रानी कमलप्रभा ने एक पुत्र जन्म दिया। उसका नाम श्रीपाल रखा गया। अभी श्रीपाल ५-६ वर्ष का शिशु ही था कि राजा सिहरथ का स्वर्गवास हो गया। सिहरथ की चिता ठडी भी नही

हो पाई थी कि उसके छोटे भाई वीरदमन ने सिहासन पर अधिकार कर लिया। उसने श्रीपाल को भी मौत के घाट उतारने का षड्यन्त्र किया, लेकिन मत्री मतिसागर की सावधानी से रानी कमलप्रभा अपने पुत्र श्रीपाल को लेकर निकल गई। वन मे उसे सात सौ कोढियो का दल मिला। वीरदमन के सैनिको से बचने के लिए कमलप्रभा अपने पुत्र को लेकर कोढी-दल मे मिल गई और उनके साथ रहने लगी। कोढियो के सपर्क से श्रीपाल को भी कोढ हो गया। यद्यपि श्रीपाल कोढी हो गया था फिर भी सभी कोढी उसे उम्बर राणा कहते और राजा के समान ही आदर देते।

श्रीपाल के कोढी होने से रानी कमलप्रभा चिन्तित हो गई। जब कोढी - दल एक नगर के समीप पहॅचा तो कमलप्रभा नगर मे कोढ की दवाई लेने गई। जाते - जाते उसने कोढियो के मुखिया से इतना अवश्य पूछ लिया कि आगे वे लोग किस नगर को जायेंगे। कोढ़ियों के मुखिया ने उज्जयिनी नगरी का नाम बता दिया। कमलप्रभा के जाने के बाद कोढी-दल आगे बढा और उज्जयिनी नगरी की सीमा पर जा पहॅचा।

मालव देश की राजधानी उज्जयिनी मे उस समय प्रजापाल नाम का राजा करता था। उसकी दो पुत्रियॉ थीं -- बडी सुरसुन्दरी और छोटी मैनासुन्दरी। सुरसुन्दरी की माता का नाम सौभाग्यसुन्दरी और मैनासुन्दरी की माता का नाम रूपसुन्दरी था। राजा प्रजापाल बहुत ही अभिमानी था। वह अपने को सबका भाग्यविधाता मानता था। समझता था कि मै किमी को भी सुखी अथवा दुखी कर सकता हूँ। सुरसुन्दरी तो राजा के अह को तुष्ट करती थी , लेकिन मैनासुन्दरी जिनधर्म और कर्मसिद्धान्त मे दृढ निष्ठा वाली थी, वह सुख-दुख का कारण अपने ही कर्मो को मानती थी।

एक दिन राजसभा मे दोनो पुत्रियॉ आई। बातो के दौरान सुरसुन्दरी ने अपने पिता के विचारो का ही समर्थन किया। अत राजा प्रसन्न हो गया और उसने उसका विवाह उसके इच्छित वर शखपुर के राजकुमार अरिदमन के साथ कर दिया। किन्तु मैनासुन्दरी ने अपने पिता के विचारो का समर्थन नही किया -- सुख दु ख का कारण प्राणी के अपने कर्मो को बताया। इस पर राजा प्रजापाल उससे नाराज हो गाया। उसने उसका विवाह कोढा उबर राणा के साथ कर दिया।

मैनासुन्दरी इस दुखद परिस्थिति मे न घबडाई, न निराश हुई। उसने नवपद की आराधना की और न केवल अपने पति को वरन् उन सभी सात सौ कोढियो को स्वस्थ कर दिया। सभी के कोढ जड - मूल से नष्ट हो गये और उनका शरीर कुदन के समान दमकने लगा। श्रीपाल की माता भी आगई। वह अपने पुत्र और पुत्रवधू को देखकर बहुत हर्षित हुई।

इसके बाद श्रीपाल विदेश यात्रा को चला गया। वहॉ उसने रैनमजूषा, गुणमाला आदि सात राज कन्याओ से और विवाह किया, अत्यधिक यश-सम्मान और ऋद्धि-समृद्धि प्राप्त की। उसने चतुरगिणी सेना भी तैयार कर ली।

जब वह लौटकर आया तो उसके वैभव को देखकर राजा प्रजापाल ने भी स्वीकार किया कि वास्तव मे किये हुए कर्म ही व्यक्ति को सुख - दु ख देते है। उसका अहकार झूठा था।

उसके बाद श्रीपाल का युद्ध उसके चाचा वीरदमन से हुआ। वीरदमन की पराजय हुई। पराजय से खिन्न होकर उसने वही मुनि - व्रत स्वीकार कर लिये।

श्रीपाल ने नौ सौ वर्ष तक राज्य किया। अपने बडे पुत्र त्रिभुवनपाल को राज्य देकर सयम ले लिया। मैनासुन्दरी भी साध्वी बन गई।

तपाराधना करके श्रीपाल मुनि ने आयु पूर्ण किया और नौवे देवलोक मे उत्पन्न हुए।

नवे भव मे इन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी।

--रत्नशेखर सूरिकृत - सिरि सिरिवाल कहा

आयंबिल तप

● भगवाल महावीर ने आत्म शुद्धि के साधनो मे तप को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। तप के बारह भेद है। इनमें छ बाह्य तप तथा छ अभ्यान्तर तप है। अनशन, अनोदरी आदि बाह्य तप है। आयंबिल, अनोदरी तप मे आता है। इसका अर्थ है नीरस भोजन। वह भी दिन मे एक बार एक स्थान पर एक अन्न ग्रहण करके सम्पन्न किया जाता है। यह तप जहॉ आत्मशुद्धि का साधन है वहॉ यह निरोगता भी प्रदान करता है। वर्तमान मे रोगो की चिकित्सा भी जटिल होती जा रही है। समय एव अर्थ दोनो के अपव्यय होने पर भी रोग दूर नही होते बल्कि ओर समस्याए उठ खडी होती हैं। ऐसी उवस्था मे आयबिल का प्रयोग वास्तव मे बहुत लाभकारी है। हमे आत्म शुद्धि का ध्यान रख कर ही प्रयोग करना चाहिए। स्वास्थ्य तो अपने आप ही प्राप्त होगा। जैसे खेती अन्न के लिए ही की जाती है, भुसा तो साथ मे प्राप्त होता ही है।

आजकल कई स्थानो मे आयबिल का विकृत रूप सामने आ रहा है। अनेक प्रकार के अन्न, नमक, काली मिर्च आदि का खुलकर प्रयोग होता है जो आयबिल के सिद्धातो के प्रतिकूल है।

भात - पानी - आयंबिल नई पद्धति - आयबिल मे एक अन्न, एक बार, एक स्थान पर ग्रहण करना होता है। अन्न जो हमारे प्रयोग मे आते है वे या तो एक दलीय या दो दलीय होते है। चना, मुग आदि दाले ये द्विदलीय अन्न है। गेहू, चावल, बाजरा आदि एक दलीय अन्न है। चावल को छोड कर सभी अन्न पकाने पर अपना स्वरूप नही छोडते पर चावल को पकाने पर यह पानी मे मिलकर लेई जैसा बन जाता है।

● *वर्तमान की समस्या रोग* - आजकल किसी को स्वास्थ्य प्राप्त होना सौभाग्य की बात मानी जाती है। पाच व्यक्तियो के परिवार मे कम से कम दो व्यक्ति तो अस्वस्थ मिलेगे ही। अत स्वस्थ न रहने के कारण अनेक समस्याए जन्म लेती है। जीवन जीने का मजा तभी है जब हम स्वस्थ रहते है। जीवन का सार है-स्वास्थ्य। हमारा जीवन है प्राण। प्राणियो का जीवन प्राण होता है। प्राण असतुलित होता है, प्राणी अस्वस्थ होता है। अस्वस्थ व्यक्ति जीते हुए भी मृतवत् अनुभव करता है। पूर्ण स्वास्थ्य के लिए शारीरिक, मानसिक एव भावनात्मक स्वास्थ्य होना आवश्यक है। अगर शरीर स्वस्थ है पर मन मे विषाद है, गडबड है तो धीमे - धीमे शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। शरीर भी स्वस्थ है, मन भी स्वस्थ है पर भाव स्वस्थ नही तो ये दोनो गड़बडा जाते है। मन का स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य, शरीर का स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य एव भाव का स्वास्थ्य भावनात्मक स्वास्थ्य यानि आध्यात्मिक स्वास्थ्य। शरीर स्थूल है, मन उससे सूक्ष्म है एव भाव उससे भी सूक्ष्म है।

● अधिकाश लोग शरीर को ही जानते हैं एव उसके स्वास्थ्य की चिन्ता करते है। पर यह तो हमारे स्वास्थ्य की समस्या का कुल १० प्रतिशत है। थोडा जो भीतर जाते है वे अनुभव करते है कि इसका भाग ३० प्रतिशत है। जो और गहरी दृष्टि रखते है वे इसका मूल्य साठ प्रतिशत लगाते है। अत भावनात्मक या अध्यात्मिक स्वास्थ्य ही मूल स्वास्थ्य है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य है हमारी साधना। ध्यान करने वाला, कायोत्सर्ग करने वाला एव आसन - प्राणायाम करने वाला व्यक्ति अपने भावनात्मक स्वास्थ्य के प्रति सजग है।

आहार का सम्बध हमारे समूचे जीवन के साथ जुडा हुआ है, प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। आहार का जितना हमारे शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बध है उससे कही अधिक हमारे मानसिक एव भावनात्मक स्वास्थ्य के साथ होता है। इसकी सब को जानकारी नही होने के कारण ही आज समाज मे अस्वस्थता चिन्ता का विषय बनी हुई है।

● *आयबिल से रोग निवृत्ति*- करीब २० वर्ष पूर्व इस विधि से आयबिल का प्रारभ किया था। इस अवधि मे हजारो व्यक्तियो ने इस अनुष्ठान में भाग लिया है। सबसे बडा भात-पानी का सामूहिक आयबिल आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य मे आमेट चातुर्मास मे हुआ था। लगभग १५०० व्यक्तियो ने आयबिल का अनुष्ठान किया था। प्रेक्षा ध्यान शिविरो मे इसका प्रयोग बराबर चलता रहा है। काफी लोगो को रोग मे मन्दता एव निवृत्ति का लाभ हुआ। अत इस बारे मे, खोज की गई की पहले भी कभी रोग निवारणार्थ आयबिल का प्रयोग हुआ है क्या ? श्रीपाल चरित्र मे मैनासुन्दरी का वर्णन मिला। उसने अपने पति का कोढ मिटाने के लिए नौ ओली आयबिल की कर अपने पति का कोढ दूर किया था। ओली मे नौ दिन

होते है एव नौ ओली मे इक्यासी दिनो तक निरन्तर आयबिल करने के कारण उसका शरीर कचन की तरह शुद्ध हो गया। यह शारीरिक स्वास्थ्य लाभ होने का आयबिल का प्रथम उदाहरण है।

आयबिल के साथ नौ पदो की साधना

चैत्र सुदी एकम अथवा आसोज सुदी एकम से नव पद की ओली नौ दिनो के लिए प्रारम्भ की जाती है। कुछ ग्रथकार चैत्र सुदी सप्तमी ओर आसोज सुदी सप्तमी से प्रारम्भ करके पूर्णिमा तक नो दिन ओली करते है। यदि तिथि घटती हो तो छठ से और यदि बढती हो तो अष्टमी से भी प्रारम्भ किया जा सकता है। नौ दिन तक निरतर नौ आयबिल किया जाता है।

विधि

(१) णमो अरिहताण - इस पद की २१ माला के साथ-श्वेत रग अर्थात् चावल का आयबिल किया जाता है।

(२) णमो सिद्धाण - इस द्वितीय पद की २१ माला के साथ-लाल रग अर्थात् गेहूँ आदि का आयबिल जरूरी माना गया है।

(३) णमो आयरियाण - इस तृतीय पद की २१ माला के साथ-पीला रग अर्थात् चने का आयबिल बहुत ही श्रेयस्कर है।

(४) णमो उवज्झायाण .- इस चतुर्थ पद की २१ माला के साथ-हरा रग अर्थात् मूग का आयंबिल प्रशस्त माना जाता है।

(५) णमो लोए सव्वसाहूण ·- इस पाचवे पद की २१ माला के साथ-काला रंग अर्थात् उडद का आयबिल कष्टनाशक बताया गया है।

अन्तिम चार पद क्रमश दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप के है। अत श्वेत रग यानि चावल का आयबिल निश्चित किया गया है। पद के अनुसार क्रमश माला

(१) 'णमो दसणस्स २१

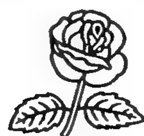
(२) 'णमो नाणस्स' २१

(३) 'णमो चरित्तस्स' २१

(४) 'णमो तवस्स' २१

यह जाप बहुत महत्वपूर्ण है। इस जाप से जीव का सक्लेश ताप टलता है। जीवन के सभी क्षेत्रो मे सफलता मिलती है।

यही जाप श्रीपाल मैना सुन्दरी ने किया था।



नवकार मन्त्र महिमा

(तर्ज - जब प्यार किया तो डरना क्या)

नवकार जपो भव तरना तो, परमेष्ठी का ध्यान धरो।
यदि मन को पावन करना तो। । ध्रुव। ।

१ जैनागम का सार यही है, इससे बढकर मन्त्र नही है
ब्रह्मसमय मे उठना होगा, मन को जागृत करना तो।।

२ पद्मासन या सिद्धासन मे, या फिर बैठे कमलासन मे
मेरुदण्ड को सीधा रखना, तन को सुस्थिर करना तो।।

३ श्वेत, लाल, पीला व नीला पचम पद का रग है काला
पाचो पर दृढ ध्यान जमाओ, यदि तन्मयता वरना तो।।

४ श्वासो पर जपना है इसको, मुक्तिनगर झट पाना जिसको।
बीजाक्षर का योग मिलाओ, शक्ति का सचय करना तो।।

५ माला को जपते मत बोलो, आँखो की पलके ना खोलो
मानस जप की महिमा निराली, सुमरो पातक हरना तो।।

परमेष्ठी स्तुति

प्रात उठकर शुद्ध भाव से, परमेष्ठी का ध्यान धरु।
देव गुरुजिन - धर्म शरण से, भव सागर को पार करु।।

बन्दू मै प्रतिदिन अर्हम् को, श्री सिद्ध आचार्य वर।
उपाध्याय सद्ज्ञान प्रदाता, मुनिवर महा उपकार कर।।

ओम् अरिहन्तदेव अघ-हरण, सिद्ध निरजन सुखकरणम्।
श्री आचार्य भवौदधि तरण, उपाध्याय मुनिवर शरणम्।।

मस्तक पर अरिहन्त विराजित, भृकुटि भाग मे सिद्ध रहे।
हृदय कमल मे गुरु, नाभि मे उपाध्याय, मुनि चरण बहे।

ओम् ह्री श्री क्ली विघ्न विनाशक, महामन्त्र जग का त्राता।
सच्चे दिल से जपने वाला, सुख शान्ति वैभव पाता॥

सकट कष्ट कटे भव सचित, महामन्त्र के दृढ बल से।
भूत प्रेत बाधाये टलती, अभिमन्त्रित नवपद जल से॥

महामन्त्र महिमा

(तर्ज - चॉद चढ्यो गिरनार)

महामन्त्र नवकार, सुमिरण नित्य करो जी नित्य करो।
जैनागम का सार, प्रात ध्यान धरो जी ध्यान धरो॥

श्रावक का आचार, पहला बतलाया जी बतलाया।
शुभ मन जपते जाप, मुक्ति - पद पाया जी पद पाया॥ १॥

है स्वार्थ भरा ससार, कोई नही अपना जी, नही अपना।
सुख-दुख मे आधार, नव पद है शरणा जी है शरणा॥ २॥

ले शरण सुदर्शन सेठ, जाता दर्शन को जी, दर्शन को।
शूल बनी झट फूल, विस्मय जन-जन को जी जन जनको॥ ३॥

बढा द्रोपदी चीर, नवपद जपने से जी, जपने से।
बच गया अमर कुमार, देखो मरने से जी, मरने से॥ ४॥

नाग बना गलहार, श्रीमती हरसाई जी, हरसाई।
अनल हुई झट शान्त, सीता जय पाई जी, जय पाई॥ ५॥

रोग शोक व्यवधान, सारे कट जाते जी, कट जाते।
कष्टो के तूफान, पल मे हट जाते जी, हट जाते॥ ६॥

राजुल के उद्‌गार, माला नित जपना जी, नित जपना।
क्या मिट्टी से प्यार, आखिर जग सुपना जी जग सुपना॥ ७॥

१ महामत्र -- साधना

(तर्ज - राष्ट्र सत को करे प्रणाम)

महामत्र को करे प्रणाम, दिव्य शक्तियो का यह धाम।
जिससे जीवन होता पावन, ध्यान धरेगे हम अविराम॥

अरिहतो की शरण शुभकर, अभय प्रदाता है तीर्थकर,
सिद्ध जयकर, सदा प्रियकर, आचार्यो का अमर सुनाम॥

उपाध्याय संबोधि प्रदाता, गणधर गण के भाग्य विधाता,
सत हमारे बने सहारे, धर्म साधना हो अभिराम॥

सब मत्रो का है यह नायक, चीर हरण मे बना सहायक,
शिव सुख दायक, शाति विधायक, नाग बना था देव ललाम॥

रोग मिटाता, शोक भगाता, सकट मे यह शक्ति जगाता,
दीप जलेगे, स्वप्न फलेगे, मगल माला पुण्य प्रकाम॥

ज-से मिलता जन्म किनारा, प - से पाप नाश की धारा,
आसन स्थिरता. फिर तन्मयता, मन मन्दिर मे आते राम।

२ महामत्र - स्तुति

(तर्ज - यायो अलबेलो)

णमो अरहन्त णमो भगवन्त,
पार लगाए नौका नमो महामन्त।

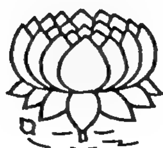
राग न द्वेष जिनमे समता सुहाए,
एक ही घाट बकरी, शेर आए जाए
महिमा निराली प्रभु की, नमो धैर्यवन्त।१।

कोई न भाए तुमको, दिल मे बिठाऊँ,
रात दिवस क्या, पल पल ध्याऊँ,
अपने बराबर करलो, नमो सिद्धिवन्त।२।

एक जनम क्या, लाखो सुधारे,
आधि उपाधि, व्याधि सबसे उबारें।
तीर्थपति के प्रतिनिधि नमो आर्यवन्त।३।

महावीर वचनो के, ज्ञाता प्रवक्ता,
अनमोल रतनो के, दाता प्रदाता।
शास्त्रो के रक्षक शिक्षक, नमो ज्ञानवन्त।४।

उज्जवल है काया जिनकी, पावन वाणी,
मन के विकार मिट गए, तप की निशाणी।
समता शिखर पर बैठे, नमो सव्वसत।५।



३ 'ख' के एक हजार बार लम्बे उच्चारंण से शरीर मे इतनी उष्णता बढती है कि सर्दी का बुखार भी मिट सकता है।

४ 'ओ' के साथ 'म्' 'ह' के साथ 'री' स के साथ 'री' इन अक्षरो के लगातार हजार बार नाद करने से वात-जन्य हिस्टीरिया जैसी भयकर बीमारिया धीरे २ शान्त होने लगती है।

जप मात्र शाब्दिक पुनरावर्तन नही, किन्तु चित्त वृत्तियो की लयावस्था है। इसी तन्मय भाव दशा मे जप शरीरगत सूक्ष्म शिराओ, कोषो तथा रक्ताणुओ मे विद्युत प्रवाह छोडता है। यही बात वर्तमान वैज्ञानिक अनुसधान कहता है। 'हमारे शरीर के जैसे सूक्ष्म और स्थूल दो भेद है, ठीक उसी प्रकार हमारे भीतर उत्पन्न होने वाली विद्युत् भी दो प्रकार की है। प्रथम जिसे घार्षणिक विद्युत् कहते है, उसका उत्पादन हमारा स्थूल शरीर करता है और धारावाही विद्युत् जिसका उत्पादन हमारा मस्तिष्क यत्र करता है। परामनोवैज्ञानिको के अनुसार मंत्र दीक्षा मे दोनो प्रकार की विद्युत् का समवेत प्रयोग होता है। चिकित्सा-क्षेत्र मे हुए अब तक के प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि मत्रोच्चारण के प्रारम्भ मे धारावाही तथा घार्षणिक विद्युत् से उत्पन्न तरगो मे विषमता रहती है। परीक्षण के दौरान पाया गया है कि अन्त में दोनो उर्जाओ की स्थिति समान हो जाती है। इस सन्तुलन के बनते ही चिकित्सा, चमत्कार तथा मानसिक शान्ति के क्षेत्र मे महान उपलब्धिया होने लगती है।

स्थूल शरीर के द्वारा होने वाली सभी प्रवृत्तियो का सचालक और नियामक हमारा सूक्ष्म शरीर है जो पूरे भोतिक शरीर मे व्याप्त रहता है। जैन दर्शन के अनुसार सूक्ष्म शरीर के दो प्रकार है तेजस शरीर और कर्म शरीर। आधुनिक योग साहित्य मे जिसे 'इथरिक बोडी' और "एस्ट्रल बोडी" कहा गया है। तैजस शरीर, स्थूल शरीर मे व्याप्त विद्युत ऊर्जा का सूचक है और कर्म शरीर (वासना शरीर) एक प्रकार का ईंधन है जो तैजस् शरीर के ताप से भौतिक शरीर की मशीन को सचालित करता है।

वैज्ञानिक अनुसधान से यह ज्ञात हुआ है, 'सूक्ष्म शरीर कुछ ऐसे सूक्ष्म तत्त्वो से बने होते है जिनके इलेक्ट्रोन स्थूल शरीर के इलेक्ट्रोन से अधिक तेज गति वाले होते है। कुछ समय के लिए यह शरीर से बाहर होकर जहाँ - तहाँ भ्रमण कर सकता है। इस शरीर की आलोकमयता छाया चित्रो के द्वारा पूर्णत प्रमाणित हो चुकी है।'

रोग भौतिक शरीर मे प्रगट होते है किन्तु उसकी सूक्ष्म क्रिया कर्म शरीर और तेजस शरीर मे बहुत पहले से प्रारभ हो चुकी होती है। इन दोनो शरीरो की रुग्णता ही सचमुच मानव शरीर की रुग्णता है।

अमेरिका के मेण्टल होस्पिटल के एक प्रवक्ता के अनुसार सभी रोग शारीरिक और मानसिक नही होते अधिकाश रोग आध्यात्मिक क्रिया से [कर्म-सस्कार क्रिया] सबधित होते है। उनकी जडे बहुत गहराई मे होती है। जहा तक न दवा पहुचती

नमस्कार महामत्र

है और न डाक्टर, अत भौतिक रोग चिकित्सा के साथ ऐसे प्रयोग भी सम्मिलित किये जाने चाहिए जो रोग की जडो को मूल से प्रकपित कर सके। आज एक्सरे से बढकर कुछ ऐसे सवेदक केमरे भी तैयार हो गये है, जिनसे सूक्ष्म शरीर मे रोग कब आया, यह मालूम किया जा सकता है।

मत्र, रोग से प्रभावित सभी अगो, स्नायुओ, रक्त तथा मस्तिष्क को आहत करके शरीर के चारो ओर फैले विद्युत् शरीर को सक्रिय और स्वस्थ करता है। रोग के कारण, विकृत भावो और अनुभवो को विशुद्ध करके मानव को बाहर और भीतर दोनो ओर से पूर्ण स्वस्थ करता है।




रंग प्रभाव

- *हरीमाला से रोग मिटे।*
- *लाल माला से शत्रु घटे।*
- *पीली माला से यश मिले।*
- *श्वेत माला से समाधि मिले।*
- *नीली माला से स्वास्थ्य मिले।*

गणधर, तीर्थकरो के शासन की व्याख्या ही नही करते, बल्कि उसकी प्रभावना, प्रशसा एव उद्दीपना भी करते है। जीवन और जगत की सयुक्त-व्यवस्था के बीच कौन-सा गुण चाहिए, इसका अनुभव करते हैं और उसके सामूहिक विकास के लिए प्रशसा एव गुणियो के प्रति मुक्त हर्ष भी प्रकट करते है। प्रमोद भाव की वृद्धि के लिए 'णमो उवज्झायाण' की विशेष आराधना करनी चाहिए।

करुणाभाव से तीर्थंकर-पद-प्राप्ति

करुणा, मैत्री भावना का व्यवहारिक प्रयोग है। जिसे चित्त की कोमलता और विचारो की समता प्राप्त है, वही करूणा का स्त्रोत बहाता है औरो के दु ख-दर्द को अपना समझता है। ससार मे ऐसे लोगो की कमी नही है, जो कटुता, क्रूरता और विषमता से भरे है। वर्तमान मे बढ रही क्रूरता मात्र करूणा पूरित चित्त के प्रकम्पनो (वायब्रेशन) से बदली जा सकती है। इस भावना के विकास के लिए 'णमो अरिहन्ताण' की आराधना करनी चाहिए।

माध्यस्थ-भाव से सिद्धपद-प्राप्ति

जैन साधना का मेरुदण्ड है समता।

जिसके चार साधन-सूत्र है --

१ वृत्ति मे अनासक्ति

२ विचार मे अनाग्रह।

३. वैयाक्तिक जीवन मे असग्रह।

४. आचरण मे अहिसा

यदि जैसे-तैसे मत्र सिद्ध हो भी जाता है, तो स्व-पर दोनो के लिए सुखकर नही होता है। आयुवेद कहता है कि रोग की सफल चिकित्सा के लिए चार बाते अनिवार्य है -- कुशल वैद्य, प्रामाणिक औषधि, रोगी का विवेक-पथ्य परहेज और यथाविधि सेवन। यही बात मंत्र साधना के विषय मे भी है।

मत्र -शास्त्र मे एक जगह लिखा है, मत्र त्राण-स्वरूप होता है। वह हमारे मनस्तत्त्व की रक्षा करता है। उसकी सुप्त शक्तियो को जगाता है, किन्तु यह सब तब घटित होता है जब मन का पूरा भाग उस भावना मे डूब जाए। एक पल के लिए भी उसे विस्मृत न होने दे। जब मन, वीणावादक की तरह केन्द्र पर लयबद्ध -- धारा-प्रवाह घूमने लगता है, तब शेष सभी आकर्षण उसमे समाविष्ट हो जाते है। यही मानम्कि तन्मयभाव मत्र सिद्धि का मूलभूत कारण है।

अध्यात्म साधना मे मानसिक एकाग्रता सबसे बडी उपलब्धि है। यदि बीच मे मानसिक चपलता तथा थकान के कारण विक्षेप उत्पन्न होने लगे, तो कुछ समय के लिए क्रम परिवर्तन करके मन को वापिस स्थिर कर ले, जैसे --

जप श्रान्तो विशेत् ध्यान, ध्यान श्रान्तो विशेत् जप।
द्वाभ्या श्रान्त पठेत् स्त्रोत्र, मित्येव गुरुभि स्मृत॥

अर्थ - जाप करते थक जाए तब ध्यान करे, और ध्यान करते थक जाए तब पुन जाप करे, यदि दोनो से थक जाए तब स्तोत्र का स्मरण करे।

महामन्त्र : निष्पत्ति

कष्ट मे धैर्य

चित्त की प्रसन्नता

प्रकाश का अनुभव

भक्ति से रोमाच

आनन्द के आसू

ससार से विरक्ति

जिन शासन की प्रभावना

रोग - मुक्ति

आत्म शक्तियो का जागरण

वासना, कामना पर विजय



क्या चाहिये

- *जपके लिए अतर की भक्ति चाहिए।*
- *तपके लिए तनकी शक्ति चाहिए।*
- *दानी बननेके लिए धनकी शक्ति चाहिए।*
- *ध्यानी बननेके लिए मनकी शक्ति चाहिए।*

स्वर - साधना

स्वर-विद्या मानव समाज की दुख-मुक्ति का कारण है। इस साधना को करने वाला रोग मुक्ति, मानसिक प्रसन्नता, भविष्य का ज्ञान तथा आत्म-दर्शन की योग्यता प्राप्त करता है।

मन और पवन दोनो का परस्पर सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध की यथार्थ जानकारी के लिए स्वरज्ञान सबधी चार बाते जानना आवश्यक है .

१ नाडी परिचय

२ तत्त्व परिचय

३ नाड़ी और मण्डल (तत्त्व) का प्रभाव

४ स्वर के साथ कार्य-विधान

जिस समय जो स्वर जिस तत्त्व के साथ चलना चाहिए, उस समय वही स्वर उस तत्त्व के साथ चले, इस योग्यता का नाम स्वर-साधना है। स्वर का हमारे शारीरिक क्रिया-कलापो के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है, जैसे किसी व्यक्ति की नाडी देखकर उसकी शारीरिक स्थिति का अनुमान लागाया जा सकता है उसी प्रकार नथुनो से बह रही वायु (प्राण) का प्रकम्पन देखकर उसके भावी शुभाशुभ का ज्ञान कर सकते है। योगियो का कहना है मानव के आचार और विचार को श्वास वैसे ही प्रभावित करता है जैसे आहार हमारी शारीरिक रचना को प्रभावित करता है। हमारे दोनो नासाछिद्रो से प्रति समय श्वास वायु का प्रवेश और निर्गमन होता रहता है। इस प्रवेश और निर्गमन के समय श्वास की एक सूक्ष्म ध्वनि-तरग उठती हुई-सी प्रतीत होती है। इसी ध्वनि-प्रकम्पन को योगियो ने स्वर-सज्ञा प्रदान की है।

कष्ट मे धैर्य

चित्त की प्रसन्नता

प्रकाश का अुनभव

भक्ति से रोमाच

आनन्द के आसू

ससार से विरक्ति

जिन शासन की प्रभावना

रोग - मुक्ति

आत्म शक्तियो का जागरण

वासना, कामना पर विजय



क्या चाहिये

- *जपके लिए अतर की भक्ति चाहिए।*
- *तपके लिए तनकी शक्ति चाहिए।*
- *दानी बननेके लिए धनकी शक्ति चाहिए।*
- *ध्यानी बननेके लिए मनकी शक्ति चाहिए।*

मुख्यत स्वर के तीन भेद है -- चन्द्र स्वर, सूर्य स्वर और सुषुम्णा स्वर। चन्द्र स्वर ईडा नाडी (वाम नासाछिद्र) से, सूर्य स्वर पिगला नाडी (दक्षिण नासाछिद्र) से तथा सुषुम्णा से चलता है। सुषुम्णा स्वर दोनो के सधिकाल मे अर्थात् स्वर परिवर्तन के समय चलता है। सूर्य स्वर उष्णता प्रधान है और चन्द्र स्वर शीतलता-प्रधान। सूर्य स्वर सक्रियता (Activeness) का परिचायक है और चन्द्र स्वर स्थिर तथा शान्त भाव-दशा का द्योतक है। दिन का मालिक सूर्य स्वर है और रात का स्वामी चन्द्र स्वर। कई आचार्यो का अभिमत इससे विपरीत है। उनका कहना है

"दिन को तो चन्दा चले, चले रात को सूर,
तो निश्चय कर जानिए, प्राण गमन अति दूर।"

स्वर और तत्त्व

स्वर श्वास की स्थिति बताता है और तत्त्व स्वर की शुभाशुभ रूपता। यदि सूर्योदय के समय चन्द्र स्वर का उदय हुआ है तो उसके २॥ घण्टे बाद सूर्य स्वर प्रारम्भ होता है और यदि सूर्य स्वर मे सूर्योदय हुआ है तो २॥ घण्टे बाद चन्द्र स्वर। क्रमश फिर सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर का क्रम चलता है। स्वस्थ मनुष्य के लिए यह जरूरी होता है कि यदि चन्द्र नाडी मे सूर्योदय हुआ है तो अस्त उससे विपरीत होना चाहिए। ऐसा होना शारीरिक और मानसिक दोनो दृष्टियो से हितकर है।

तत्त्व का अर्थ है स्वर की गति, आकार, रग और प्रभाव। तत्त्व पाच होते है -- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

मे होना चाहिए। यदि इस क्रम से विपरीत स्वर मे सूर्योदय होता है तो हम जान ले कि यह पक्ष अशान्ति, आलस्य एव अस्वास्थ्य-कारक होगा। प्रत्येक तीन तिथियो के वाद सूर्योदय पूर्ववर्ती तीन तिथियो से विपरीत स्वर मे उदित होता है जैसे -

कृष्ण पक्ष की १, २, ३ सूर्य स्वर

कृष्ण पक्ष की ४, ५, ६ चन्द्र स्वर

कृष्ण पक्ष की ७, ८, ९ सूर्य स्वर

कृष्ण पक्ष की १०, ११, १२ चन्द्र स्वर

कृष्ण पक्ष की १३, १४, १५ सूर्य स्वर

जिस स्वर मे सूर्योदय हुआ है उसी स्वर में पक्ष का अन्त हो जाता है।

वार - विचार

मगल, शनि, तथा रविवार -- सूर्य स्वर

सोम, बुध, बृहस्पतिवार तथा शुक्रवार -- चन्द्र स्वर

इसका तात्पर्य यह है, पूर्वोक्त वार जिस दिन होते है, उस दिन किए जाने वाले कार्य उसी स्वर मे सफल होते है जैसे - मगल को कार्य प्रारम्भ करते समय सूर्य स्वर की प्रतीक्षा करनी चाहिए ऐसा विधान मिलता है।

दिशा - विचार

दक्षिण, पश्चिम --चन्द्र स्वर (बाया स्वर)

पूर्व, उत्तर -- सूर्य स्वर (दाहिना स्वर)

सुषुम्ना स्वर मे यात्रा प्रारम्भ नही करनी चाहिए।

३ बाए भाग से प्रश्न हो और सख्या विषम हो तथा दक्षिण तरफ से प्रश्न हो एव अक्षर सख्या सम हो तो कार्य मे सिद्धि प्राप्त नही होती।

४ यदि प्रश्नकर्त्ता आपके अवरुद्ध स्वर की ओर बैठा है तो प्राय अनिष्ट या नाश होता है। जो स्वर पूरे प्रवाह के साथ बह रहा है उस ओर यदि प्रश्नकर्त्ता हो तो उसे सफलता अवश्य मिलती है।

५ यदि किसी ने रोगी के विषय मे आपसे प्रश्न पूछा हो तो पूछने वाला व्यक्ति किधर से आया है और आपके किस ओर आकर बैठा है यह देखा जाता है।

स्वर - शास्त्र के अनुसार किसी भी कार्य को प्रारम्भ करते समय यदि अपना बाया स्वर चल रहा हो अथवा बाए स्वर मे वायु प्रवेश करने वाला हो तो शुभ है, किन्तु स्वर के साथ तत्त्व का खयाल रखना बहुत जरूरी है।

पृथ्वी तत्त्व - लाभकारक

जल तत्त्व - तत्क्षण लाभकारक

वायु तत्त्व - हानिकारक

अग्नि तत्त्व - हानिकारक

आकाश तत्त्व - कार्य अभाव

प्रश्न कर्ता जिस प्रश्न वाक्य का प्रयोग करता है उसके अक्षर यदि विषम है और दक्षिण नाडी चल रही है, तो कार्य सिद्धि होती है और यदि वाम नाडी चल रही है और समाक्षर वाला प्रश्न वाक्य हो तो अवश्य कार्य सिद्धि होती है।